Con. 3.VII. 19. 48
350

अंक 7
संख्या 19

शुक्रवार
3 दिसम्बर,
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

आयर अधिनियम के विषय में वक्तव्य..... 1239-1240

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1240-1294

[अनुच्छेद 14, 15, 15-ए, 16, 17, 18 और नवीन अनुच्छेद 19 से 22 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 3 दिसम्बर, 1948

भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में 10 बजे प्रातः उपाध्यक्ष (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।

आयर अधिनियम के विषय में वक्तव्य

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): जब हमारे प्रधान मन्त्री ने परिषद् के समक्ष वे शर्तें रखी थीं जो आयरलैण्ड के यूनाइटेड किंगडम में प्रवेश, बल्कि उससे सम्बन्ध-विच्छेद के सम्बन्ध में थीं, तब कुछ ऐसे सदस्य थे जिन्होंने... (*बाधा*)

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं इस सम्बन्ध में कुछ कह सकता हूं?

***उपाध्यक्ष:** हां।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि मुझे आयर के प्रधान मन्त्री का एक तार मिला था, जिसे मैंने परिषद् के सामने रख दिया है। मुझे स्मरण है कि किसी वाद-विवाद के समय किसी सदस्य ने—मैं भूल गया हूं कि वे कौन थे—उस नये विधेयक की एक प्रति मांगी थी जो आयरिश संसद में विचाराधीन है। मैंने कहा था कि मैं पता लगाऊंगा। मैंने वहां लिख दिया था कि तार द्वारा वह विधेयक भेज दिया जाये। वह हमारे पास अभी नहीं पहुंचा है। उन्होंने हमें सूचित किया है कि असली विधेयक हवाई डाक द्वारा भेजा जा रहा है, किन्तु तार द्वारा उन्होंने हमें इस विधेयक का मजमून भेज दिया है। यह विधेयक अत्यंत छोटा है। इसमें एक-एक पंक्ति की चार-पांच धारायें ही हैं। जो सदस्य उसे देखना चाहें उनके लिये यह मेज पर रख दिया गया है।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): क्या आप कृपया साइक्लोस्टाइल मशीन द्वारा उसकी नकलें छपवा कर सारे सदस्यों को वितरित करा देंगे?

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** नहीं, श्रीमान्। मुझे आपत्ति है। तार मेज पर रख दिया गया है तथा सदस्य इसे देख सकते हैं।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***उपाध्यक्ष:** परिषद् की कार्यवाही आरम्भ करने से पूर्व, मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहता हूं कि मेरे पास हमारे अध्यक्ष का एक पत्र आया है, जिसमें मुझे सूचित किया गया है कि वे शीघ्रता से स्वस्थ होते जा रहे हैं और बहुत सम्भव है कि वे 27 तारीख से अपना काम पुन: संभाल सकेंगे। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि वे परिषद् का सभापतित्व नहीं कर सके, और मैंने उन्हें सूचित कर दिया है कि हमें उन परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान है जिनके कारण उन्हें अनुपस्थित रहना पड़ा है। मुझे समाचारपत्रों से पता चला है कि वे आज 64वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। क्या मैं परिषद् की अनुमति से उन्हें अपनी बधाइयां भेज दूं तथा साथ ही उन्हें विश्वास दिला दूं कि हम उनकी अनुपस्थिति को कितना अनुभव कर रहे हैं? इस सम्बन्ध में उन्हें इस बात से भी अवगत कर दूंगा कि यद्यपि परिषदात्मक कार्यपद्धति के विषय में अपनी त्रुटियों से मैं पूर्णत: परिचित हूं, किन्तु मैं अब तक परिषद् की सदिच्छा से कार्य चलाता रहा हूं।

***माननीय सदस्यगण:** निस्संदेह।

विधान का मसौदा (जारी)

अनुच्छेद 14-(जारी)

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 14 पर वाद-विवाद पुनरारम्भ करेंगे। संशोधन 510 पेश किया गया था। 509 पर मत लिये जायेंगे। अतएव हम अब 512 को लेंगे।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त तथा बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 14 में निम्नलिखित अंश खण्ड (4) के रूप में जोड़ दिया जाये:

'(4) The right of the people to be secured in their persons, houses, papers and effects against unreasonable searches and seizures shall not be violated and no warrants shall issue but upon probable cause supported by oath or affirmation and particularly describing the place to be searched and the persons or things to be seized.'

[(4) अनुचित तलाशियों तथा अपहरण के विरुद्ध अपने शरीर, गृह, पत्रों, तथा सामान के विषय में सुरक्षित रहने का जो लोगों को अधिकार प्राप्त

है उसका उल्लंघन नहीं किया जायेगा और सिवाय सम्भावित कारण के जिसका आधार सौगन्ध अथवा घोषणा हो, वारण्ट (अधिपत्र) जारी नहीं किये जायंगे, और जिस स्थान की तलाशी लेनी हो और जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को कब्जे में करना हो, उनका विवरण विशेष रूप से दिया रहेगा।]"

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण संशोधन है। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि यह बात अमरीकी विधान के अनुच्छेद 4 में है, और आयर के विधान में खण्ड (2) तथा (5) हैं जो इसके सदृश हैं, और जर्मन विधान के अनुच्छेद 114 तथा 115 भी इसी के समान हैं। डॉक्टर अम्बेडकर की पुस्तक—'अल्पसंख्यक तथा राज्य'—के पृष्ठ 11 की मद 10 में एक ऐसा ही प्रावधान रखा गया है। अतएव यह ऐसा संशोधन है, जिसके औचित्य के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता। आज भारत में क्या स्थिति है? भारत के लगभग प्रत्येक प्रान्त में गुण्डा कानून तथा जन-सुरक्षा कानून हैं जिनमें अपील, आवेदन अथवा सफाई पेश करने के लिये कोई प्रावधान नहीं है। बिना अधिपत्र (वारण्ट) के गिरफ्तारियां होती हैं तथा बिना समुचित कारण के तलाशियां होती हैं। हम विधिहीन विधियों द्वारा शासित हो रहे हैं और अनधिकृत बन्दीकरणों तथा तलाशियों के कारण जो कठिनाइयां होती हैं उनके निवारण की कोई व्यवस्था नहीं है।

हम 1947 में देख चुके हैं कि केवल संदेह मात्र पर हजारों लोगों को बन्दी बनाया गया तथा मकानों की तलाशियां ली गईं। परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्यों का उत्साह नष्ट हो गया, तथा उनके साथ देश में अपराधियों का सा व्यवहार किया गया। मैं परिषद् के समक्ष एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण दूंगा। जब भी हम देहली जाने के लिये हवाई अड्डे पर जाते, हमारे सामान की तलाशी होती। बिना किसी कारण, बिना किसी वजह, तथा बिना हमें सावधान किए, ऐसा होता था। मैं दूसरा उदाहरण दूंगा। जब हैदराबाद में पुलिस कार्यवाही की गई, तब निकटस्थ प्रान्तों में बिना किसी औचित्य के, प्रत्येक मुस्लिम को बन्दी बना लिया गया। यदि वे मुसलमान वास्तव में देशद्रोही थे तो उन पर मुकद्दमा चलाया जाना चाहिये था, उन्हें सजा दी जानी चाहिये थी तथा उन्हें फांसी पर लटका देना चाहिये था। किन्तु जिन लोगों का हैदराबाद से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था, उन्हें इस बहाने पर बन्दी बनाया गया कि वे केवल रक्षात्मक संरक्षण में रखे जा रहे हैं। अच्छा, यदि उन्हें रक्षात्मक संरक्षण में रखा गया था, तो उनके बीबी-बच्चों को भी रक्षात्मक संरक्षण में क्यों नहीं रखा गया? वे क्यों बाहर ही रहे?

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

अतएव मेरा निवेदन है कि मैंने इस संशोधन में जिस मूलाधिकार की मांग की है, यदि उसकी प्रत्याभूति नहीं दी गई तो इन गिरफ्तारियों तथा औचित्यशून्य तलाशियों का अन्त नहीं होगा। मैंने यह संशोधन इसी सच्ची आशा से पेश किया है कि इसे स्वीकार कर लिया जायेगा।

***उपाध्यक्षः** सूची में अगला संशोधन श्री कक्कन के नाम से है।

***श्री पी. कक्कन** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं इसे पेश नहीं करना चाहता, किन्तु आपकी अनुमति से मैं इस पर बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** इसकी तो मैं अनुमति नहीं दे सकता। अनुच्छेद 14 पर आम वाद-विवाद के समय मैं माननीय सदस्य को बोलने की अनुमति दे सकता हूं। मेरे ख्याल में इस अनुच्छेद पर कोई और संशोधन नहीं है। अब परिषद् इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद आरम्भ कर सकती है। श्री कक्कन जो वक्तृता देना चाहते थे वे अब दे सकते हैं।

***श्री पी. कक्कनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैंने इस अनुच्छेद पर बोलने के ही उद्देश्य से एक संशोधन की सूचना दी थी।

श्रीमान्, मुझे जो कुछ कहना है वह जेल के प्रशासन के विषय में कहना है। जेलों में कार्य देने के विषय में बन्दी-बन्दी में विभेद किया जाता है। यदि एक कैदी हरिजन जाति का होता है तो चाहे उसकी श्रेणी, सामाजिक-स्थिति अथवा शिक्षा कुछ भी हो उसे भंगी का काम दिया जाता है। इस अवसर पर मैं अपनी इस सम्मति तथा भावना को व्यक्त करना चाहता हूं कि आगे से काम देने के विषय में इस भेद को दूर कर देना चाहिये। श्रीमान्, मुझे अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि हरिजन जाति के लोगों के साथ जेल में बहुत क्रूर बर्ताव किया जाता है जैसे कि ईश्वर ने भंगी का काम करने के लिये ही उनकी सृष्टि की हो। मुझे हार्दिक आशा है कि अब से यह भेद-भाव दूर कर दिया जायेगा तथा हरिजनों के साथ सब स्थानों पर निष्पक्ष व्यवहार किया जायेगा। इसी उद्देश्य से मैंने अपने संशोधन में कहा था कि किसी भी अपराध के लिये दण्डित किसी व्यक्ति को जेल में धर्म, जाति, प्रजाति अथवा श्रेणी के अनुसार कार्य नहीं करना पड़ेगा। श्रीमान्, आपने मुझे बोलने का जो अवसर दिया उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं परिषद् के समक्ष जो बात रखना चाहता हूं वह अपेक्षाकृत एक संकीर्ण बात है। इस

अनुच्छेद 14 का खण्ड (2) इस प्रकार है: "कोई व्यक्ति उसी अपराध के लिये एक से अधिक बार दण्डित नहीं किया जायेगा।" मुझे परिषद् के कुछ माननीय सदस्यों ने बताया है कि सम्भवत: इससे उन मामलों पर प्रभाव पड़ेगा जहां कि सरकारी अधिकारियों के विषय में विभागीय कार्यवाही की जा चुकी है, तथा उन्हें दण्ड दिया जा चुका है, उन पर पुन: मुकद्दमा चला कर उन्हें दण्ड नहीं दिया जा सकता यदि उन्होंने कोई दण्डनीय अपराध किया हो। इसके विपरीत यदि किसी सरकारी अधिकारी को मुकद्दमा चला कर न्यायालय द्वारा कारावास का अथवा अर्थ दण्ड दिया जा चुका है तो सरकार को उसके विरुद्ध अनुशासन-भंग की कार्यवाही का अधिकार शायद न रहे। यद्यपि यह एक छोटी सी बात है तथा यह अर्थ निकाला जा सकता है कि मूलाधिकारों में इस खण्ड विशेष से नियमों के अधीन अपने अधिकारियों के आचरण तथा अनुशासन के सम्बन्ध में सरकार के अधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा या नहीं, किन्तु मेरे विचार में जब हम एक विशेष प्रकार की कार्यवाही पर प्रतिन्ध लगा रहे हैं तो इस बात को अधिक स्पष्ट कर देना ही अभीष्ट है।

मैं जानता हूं कि अब संशोधन पेश करने का समय नहीं रहा है। मैं यह चाहता हूं कि इस खण्ड की भाषा को इस प्रकार रखा जाये: "किसी भी मनुष्य पर उसी अपराध के लिये एक से अधिक बार मुकद्दमा नहीं चलाया जायेगा तथा दण्ड नहीं दिया जायेगा।" यदि मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर 'दण्ड देने' शब्दों के साथ 'मुकद्दमा चलाना' इन शब्दों को स्वीकार कर लें और यदि, श्रीमान्, आप तथा परिषद् उन्हें ऐसा करने की अनुमति प्रदान कर दें, तो यह केवल बुद्धिमत्ता की बात ही नहीं होगी बल्कि इससे भावी सरकार की काफी कठिनाई दूर हो जायेगी। यही सुझाव मैं परिषद् के समक्ष रखने का साहस करता हूं। परिषद् इस पर जैसा उचित समझे कर सकती है।

***उपाध्यक्ष:** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो अनुमति मांगी है, क्या परिषद् वह अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जिस संशोधन का सुझाव रखा है, वे उसे पेश करें।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर जो संशोधन पेश किये गये हैं, उनके विषय में मैं यह कह

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

सकता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन रखा है मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। वास्तव में यह संशोधन आवश्यक तो नहीं है, किन्तु क्योंकि यह संशय व्यक्त किया गया है कि 'दण्ड देना' इन शब्दों के अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं, अतः मेरे विचार में 'मुकद्दमा चलाना तथा दण्ड देना' इन शब्दों का रखना अधिक वांछनीय हो सकता है।

संशोधन संख्या 506 तथा 509 के विषय में, जिन्हें कि मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने उपस्थित किया है...

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): इसकी संख्या 510 है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** कुछ भी हो, मैंने कल दिन भर स्थिति पर विचार किया है और मुझे संतोष है कि इन संशोधनों को स्वीकार करने से कुछ लाभ नहीं होगा। किन्तु मैं मि. करीमुद्दीन के पेश किये हुये संशोधन सं. 512 को स्वीकार करने के लिये राज़ी हूं। मेरे विचार में यह एक लाभप्रद प्रावधान है तथा विधान में इसे स्थान दिया जा सकता है। इसमें कुछ भी नई बात नहीं है क्योंकि उन्होंने जो खण्ड सुझाया है वह समूचा ही दण्ड विधि संहिता (Criminal Procedure Code) में पाया जाता है, अतएव एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि यह पहले से ही देश में प्रचलित कानून है। यह नितांत सम्भव है कि भविष्य का विधान-मण्डल उनके संशोधन में निर्दिष्ट प्रावधानों का विखण्डन कर दे, किन्तु जहां तक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, वे प्रावधान इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि इन प्रावधानों को विधान-मण्डल की शक्ति से परे रखना अतीव वांछनीय है, और इसी कारण मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

मेरे मित्र श्री कक्कन ने जो संशोधन नं. 513 रखा था, उसके विषय में...

***एक माननीय सदस्य:** यह पेश नहीं किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन सं. 505 तथा 506 के विषय में क्या बात है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं संशोधन संख्या 506 तथा 510 को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या आपको संशोधन सं. 505 के विषय में कुछ कहना है जिसके दूसरे भाग में पंचम सूची के संशोधन संख्या 92 द्वारा परिवर्तन किया गया है? शायद आप इसे भूल गये। यह पण्डित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उनके संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लेता हूं।

संशोधन संख्या 505 जैसे कि वह पंचम सूची के संशोधन संख्या 92 द्वारा संशोधित हुआ है। मुझे पता चला है कि डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है :

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'under the law at the time of the commission' (अपराध करने के समय के कानून के अधीन) इन शब्दों के स्थान पर 'under the law in force at the time of the commission' (अपराध करने के समय प्रवृत्त कानून के अधीन) ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 506 । प्रश्न यह है:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'उससे अधिक' इन शब्दों के पश्चात् 'अथवा उससे भिन्न प्रकार के' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 510 । प्रश्न यह है कि:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (2) के अन्त में 'सिवाय उस स्थिति के जिसमें कि 1898 के दण्ड विधि संहिता द्वारा ऐसा करने की अनुमति दी गई हो ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 512 जिसे काज़ी सैयद करीमुद्दीन ने पेश किया है तथा डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। प्रश्न यह है:

[उपाध्याक्ष]

"कि अनुच्छेद 14 में, निम्न खण्ड, खण्ड (4) के रूप में, जोड़ दिया जाये:

'(4) कि अनुचित तलाशियों तथा अपहरण के विरुद्ध अपने शरीर, गृह, पत्रों तथा सामान के विषय में सुरक्षित रहने के लोगों के अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जायेगा, और सिवाय सम्भावित कारण के, जिसका आधार सौगन्ध अथवा घोषणा हो, वारण्ट जारी नहीं किये जायेंगे, और जिस स्थान की तलाशी लेनी हो और जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को कब्जे में करना हो, उनका विवरण विशेषरूपेण दिया जायेगा। '"

मेरे विचार में 'हां' विजयी रहे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** 'नहीं' वाले विजयी रहे।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस पर पुन: मत लूंगा।

मेरे विचार में 'हां' वाले विजयी रहे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नहीं, श्रीमान्, 'नहीं' वाले विजयी रहे।

***उपाध्यक्ष:** सबसे पहले मैं हाथ उठाने के लिये कहूंगा।

(विभाजन की घण्टी बजाई गई)

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं यह सुझाव दूं कि इस प्रश्न को इस समय स्थगित रखा जाये और सदस्यों को आपस में विचार-विनिमय करके निर्णय पर पहुंचने का अवसर दिया जाये? कई बार ब्रिटिश लोक-सभा भी समिति का रूप धारण कर लेती है जिससे कि विभिन्न दलों को विचार-विमर्श करके किसी सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंचने का अवसर मिल सके।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस संशोधन पर मत गणना स्थगित करने के लिये तैयार हूं, पर शर्त यह है कि परिषद् इसके लिये आवश्यक अनुमति दे दे। मैं परिषद् से शान्त रहने की प्रार्थना करूंगा। निर्णय करने की यह प्रणाली नहीं है। पारस्परिक प्रयत्नों तथा सद्भावना के द्वारा ही हमें निर्णय पर पहुंचना चाहिये। क्या परिषद् इस प्रश्न पर मत गणना स्थगित करने के विषय में मुझे आवश्यक अधिकार देती है?

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** उपाध्यक्ष महोदय, क्योंकि इस विषय पर कई सदस्यों के मन में ज़रा भ्रम-सा उत्पन्न हो गया है, अत: मेरे विचार में, यह

जो सुझाव रखा गया है कि हम इस विषय पर बाद में विचार कर लें और अभी अन्य बातों पर विचार करें, वह अत्यंत वांछनीय है। हां, जो परिषद् की इच्छा होगी, वही होगा। श्रीमान्, मैं आपसे तथा परिषद् से यह कहूंगा कि आपका सुझाव स्वीकार कर लिया जाये।

***डॉक्टर बी.वी. केस्कर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या विभाजन की घण्टी बजने के पश्चात् भी ऐसा हो सकता है?

***उपाध्यक्ष:** मैं लाक्षणिक बातों (technicalities) पर कभी नहीं जाता। जब तक मैं यहां हूं मैं सामान्य विवेकानुसार चलता रहूंगा। मुझे लाक्षणिक बातों का कुछ ज्ञान नहीं है, किन्तु मुझे मानवीय स्वभाव का कुछ ज्ञान है। मैं जानता हूं कि अन्ततोगत्वा केवल सद्भावना, सामान्य विवेक तथा सदिच्छा ही किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायक होंगी। मैं मत लेना स्थगित करने के लिये परिषद् की अनुमति चाहता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** हां।

अनुच्छेद 15

***उपाध्यक्ष:** अब हम अगले अनुच्छेद को लेंगे। अगला संशोधन नं. 514 का है, किन्तु श्री लारी अनुपस्थित हैं, अत: मैं उससे अगले संशोधन पर आता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद स्थगित कर दिया जाये, क्योंकि इसका परीक्षण हो रहा है तथा परिषद् के सदस्य इस अनुच्छेद पर विचारार्थ कुछ और समय चाहते हैं।

अनुच्छेद 15-ए

***उपाध्यक्ष:** बहुत अच्छा। तब फिर मैं अनुच्छेद 15-ए (नये अनुच्छेद) को लेता हूं। संशोधन संख्या 534 का आशय मृत्यु दण्ड को बन्द करना है। एक ऐसे ही संशोधन पर पहले मत लिया गया था और वह गिर गया था, अत: मेरे विचार में यह पेश नहीं हो सकता।

(संशोधन सं. 535 तथा 536 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 16 को विधान का अंग माना जाये।

***एक माननीय सदस्य:** अनुच्छेद 15 के विषय में क्या हुआ?

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद 15 को अभी स्थगित रखा गया है—माननीय सदस्य ध्यान नहीं दे रहे होंगे अत: उन्होंने श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का सुझाव नहीं सुना जिसे कि सभापति ने स्वीकार कर लिया था। संशोधन संख्या 537 नकारात्मक संशोधन है, अत: मैं इसे अनियमित ठहराता हूं।

(संशोधन नं. 538, 539 और 540 पेश किये नहीं गये।)

संशोधन नं. 542, गो-वध-निवारण सम्बन्धी प्रावधान में आ जाता है जिसे कि परिषद् पहले ही पारित कर चुकी है।

श्री सी. सुब्रह्मण्यम् (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद को मूलाधिकार में समाविष्ट अनुच्छेद के रूप में मानने में कुछ कठिनाई अनुभव करता हूं। अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "इस संविधान के अनुच्छेद 244 के प्रावधानों के तथा संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुये भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।"

मुझे जो कठिनाई अनुभव होती है उसकी चर्चा करने से पहले, मैं परिषद् का ध्यान विधान के मसौदे की उन धाराओं की ओर आकृष्ट करूंगा जो वाणिज्य तथा व्यापार के सम्बन्ध में हैं।

इस मसौदे में इस विषय के सम्बन्ध में अर्थात् अन्ताराज्य वाणिज्य तथा व्यापार के सम्बन्ध में तीन अनुच्छेद, 243, 244 तथा 245 हैं। इसके अतिरिक्त संघ-सूची की विधायिनी शक्तियों की सूची में 73वें अनुच्छेद में यह कहा गया है: "सूची 2 की प्रविष्टि 33 के प्रावधानों के अधीन रहते हुये अन्ताराज्य व्यापार तथा वाणिज्य"। इसके अलावा द्वितीय सूची की 32वीं मद में 'राज्य के भीतर वाणिज्य व्यापार, बाजार और मेलों' की, तथा 33वीं मद में "इस संविधान के अनुच्छेद 244 के प्रावधानों के प्रयोजनार्थ दूसरे राज्य के साथ वाणिज्य, व्यापार और यातायात के नियमन" ऐसा कहा गया है। अतएव आप देखेंगे कि अनुच्छेद 244 के अधीन अन्ताराज्य वाणिज्य तथा व्यापार एक संघीय विषय है। संसद् इसके सम्बन्ध में कार्यवाही करेगी। राज्यान्तर्गत वाणिज्य तथा व्यापार और अनुच्छेद 244 के अधीन अन्ताराज्य वाणिज्य-व्यापार, राज्यों के विधान-मण्डलों को सौंपा गया है। श्रीमान्, आप देखेंगे कि अनुच्छेद 244 में अन्ताराज्य व्यापार

तथा वाणिज्य के विषय में भी राज्यों के विधान-मण्डलों को कुछ कर तथा अनुबन्ध लगाने की कुछ शक्तियां दी गई हैं। यह ध्यान रख कर यदि हम अनुच्छेद 16 पर विचार करते हैं तो हम 'इस विधान के अनुच्छेद 244 के प्रावधानों के अधीन रहते हुये' यह शब्द कहां पाते हैं, अर्थात् अन्ताराज्य वाणिज्य तथा व्यापार के विषय में भी राज्यों के विधान-मण्डलों को जो कुछ शक्तियां दी गयी हैं उन पर इस अनुच्छेद का प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतएव उसे छोड़ कर यह अनुच्छेद इस प्रकार हो जायगा: "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुये भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।" मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यह मूलाधिकार कैसे हो सकता है तथा कोई अधिकार यहां सुरक्षित रखा भी गया है या नहीं। मूलाधिकार की कल्पना ही यह होती है कि कोई विशेष अधिकार संघ अथवा राज्य के विधान-मण्डलों से छीन लिया गया है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि सार्वभौमसत्ता जनता में निहित है, किन्तु वह सत्ता विधान-मण्डलों को प्रदान कर दी गई है अथवा कुछ विषयों के सम्बन्ध में वह सत्ता विधान-मण्डलों के द्वारा व्यक्त की जाती है।

किन्तु कुछ मूलाधिकारों के सम्बन्ध में हम कहते हैं कि संसद् अथवा सरकार को हस्तक्षेप करने का ज़रा सा भी अधिकार नहीं होगा। यहां तक कि उस सम्बन्ध में जनता की सत्ता सर्वोपरि है। यह सत्ता न किसी को दी जाती है और न किसी को उसे काम लेने का अधिकार दिया जाता है। यदि हम इस अनुच्छेद पर इस दृष्टिकोण से विचार करें तो इस अधिकार में से क्या अवशिष्ट बचता है जिसे संघ का विधान-मण्डल अथवा राज्य का विधान-मण्डल छू न सकता हो? आप देखेंगे कि यहां यह उल्लेख है कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुये भारत के राज्यक्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।" यहां संसद् की सत्ता सम्पूर्ण है। विधान-मण्डलों के क्षेत्र से कुछ भी अधिकार नहीं हटाया गया है। यहां जिस अधिकार को मूलाधिकार के रूप में आरक्षित किया जाये वह ऐसा होना चाहिये जिसमें कि न तो संघ का विधान-मण्डल और न राज्य का ही विधान-मण्डल हस्तक्षेप कर सके। यहां ऐसा कोई अधिकार शेष नहीं रहता। आप ध्यान रखें कि अनुच्छेद 16 में ये शब्द हैं कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के आधीन रहते हुये" और इस पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। यहां तक कि इसका यह आशय निकलता है कि संसद् की शक्तियों के आधीन रहते हुये भारत के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार की स्वतन्त्रता होगी। मैं सविनय निवेदन करता हूं कि यह मूलाधिकार नहीं है।

[श्री सी. सुब्रह्मण्यम्]

मैं जानता हूं मेरे कुछ मित्र ऐसा सोचते हैं कि राज्य के स्थान पर संसद् में शक्तियों को निहित कर देना ही मूलाधिकार के लिये पर्याप्त है। यही बात कुछ मित्रों ने कही है। यदि इस तर्क को इसके निष्कर्ष तक पहुंचाया जाये तो प्रथम सूची में जितने विषय हैं वे सब मूलाधिकार ही हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है। मूलाधिकार की तो कल्पना ही यह है कि उसके सम्बन्ध में न तो संसद् के और न राज्यों के विधान-मण्डलों को हस्तक्षेप करने का अधिकार हो। यहां आप संसद् को सर्वोच्च सत्ता देते हैं; केवल संसद् की शक्तियों के अधीन रहते हुये ही भारत के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत स्वतंत्र व्यापार, वाणिज्य तथा समागम होगा। मेरे लिये यह समझना कठिन है कि यहां कौन-सा अधिकार संसद् अथवा राज्यों के विधान-मण्डलों के क्षेत्रों से हटाया गया है और मूलाधिक के रूप में सुरक्षित कर दिया है। यह कहना सर्वथा ठीक हो सकता है कि स्वतंत्र व्यापार के विषय में केवल संसद् को ही अधिकार होगा। यह तो संघीय विधान-मण्डल और राज्य के विधान-मण्डल के बीच प्रशासन की शक्तियों अथवा विधायिनी शक्तियों का वितरण है। निस्सन्देह यह कोई मूलाधिका नहीं है। जैसे कि मेरे एक मित्र ने बलपूर्वक कहा है कि यह संसद् के हेतु ही मूलाधिकार है। किसी नागरिक अथवा नागरिकों के वर्ग के हेतु कोई अधिकार नहीं है। इन परिस्थितियों में मैं चाहता हूं कि माननीय प्रस्तावक यह समझायें कि यह चीज़ मूलाधिकारों के अध्याय में कैसे आती है और कौन-सा अधिकार यहां दिया गया है, यद्यपि मैं देखता हूं कि वे दूसरी बातों में पहले से ही व्यस्त हैं और मुझे पता नहीं है कि इन्होंने मेरी वक्तृता को सुना भी है या नहीं।

***उपाध्यक्षः** श्रीमान् सुब्रह्मण्यम्, क्या मैं यह सुझाव दूं कि आप कोई सुनिश्चित सुझाव पेश करें जिससे कि डॉ. अम्बेडकर उत्तर दे सकें?

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** सुनिश्चित सुझाव यह है। डॉ. अम्बेडकर के हेतु मैं अपनी बात फिर कहता हूं। अनुच्छेद 16 के विषय में मेरी शिकायत यह है। संसद् अथवा राज्यों, किसी के विधान-मण्डल के क्षेत्र से भी कोई अधिकार कम नहीं किया गया है जिससे कि ऐसा कहा जा सके कि अनुच्छेद 16 में कोई अधिकार सुरक्षित किया गया है। क्योंकि आप देखेंगे कि यहां कहा गया है कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के प्रावधानों के अधीन रहते हुये (अनुच्छेद 244 का प्रसंग ही छोड़िये) भारत के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार तथा वाणिज्य तथा समागम अबाध होगा"। आप देखेंगे कि यह अधिकार संसद् द्वारा बनाई गई

किसी विधि के अधीन रहेगा और इस पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होगा। आपने इस विषय में संसद् की सर्वोच्च सत्ता को सुरक्षित कर दिया है और संसद् सब कुछ कर सकती है। मूलाधिकार बनाने के लिये इसे संसद् अथवा राज्य के विधान मण्डलों के क्षेत्र से बाहर निकालना चाहिये। मैं देखता हूं कि किसी अधिकार का कोई भी अवशेष नहीं बचता है जिसे संसद् अथवा राज्य का विधान-मण्डल न छू सके, अतः यह उचितरूपेण मूलाधिकारों के अध्याय में नहीं आना चाहिये। यह कहना कि भारत के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत अबाध व्यापार से सम्बन्धित विषयों पर संसद् ही कार्यवाही करेगी संसद् तथा राज्य के विधान-मण्डलों के बीच शक्तियों के वितरण की ही बात कही जा सकती है। हम प्रथम सूची की प्रविष्टि 73 को भी रख सकते हैं। आप द्वितीय सूची की 32 और 33वीं प्रविष्टियों में भी यह प्रतिबन्ध रख सकते हैं कि यह भारत में अबाध व्यापार से सम्बन्धित विषयों के अधीन रहेगा। मैं माननीय प्रस्तावक से प्रार्थना करूंगा कि वे मुझे समझायें कि क्या कोई ऐसा अधिकार यहां है जिसे विधान-मण्डलों और सरकार के क्षेत्र से निकाल दिया गया है और क्या अनुच्छेद 16 को यहां मूलाधिकारों के इस अध्याय में रखना उचित होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 16 आवश्यक है अथवा नहीं, यह जानने का एक यही तरीका है कि हम इस अनुच्छेद को हटा देने से जो परिणाम होंगे उन पर विचार करें। मान लीजिये कि अनुच्छेद 16 नहीं रहता, तो क्या होगा? अनुसूची की सूचियों के अनुसार केन्द्र को विभिन्न प्रान्तों के बीच व्यापार सम्बन्धी सारे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा, और अनुच्छेद 243 के अनुसार कोई भी प्रान्त किसी प्रान्त अथवा राज्य के विरुद्ध विभेद नहीं कर सकता। अनुच्छेद 244 के अनुसार विभेदात्मक कर नहीं लगाये जा सकते। अनुच्छेद 244 (बी) के अनुसार प्रत्येक राज्य (इसमें प्रत्येक प्रान्तीय विधान-मण्डल समाविष्ट है) को यह अधिकार होगा कि वह उस राज्य के साथ व्यापार, वाणिज्य अथवा समागम की स्वतन्त्रता पर कानून द्वारा ऐसे उचित प्रतिबन्ध लगा सके जो कि सार्वजनिक हितों के लिये अपेक्षित हों। अतएव प्रत्येक प्रान्तीय विधान-मण्डल तथा प्रत्येक राज्य के विधान-मण्डल को व्यापार, वाणिज्य अथवा समागम की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार हैं मान लीजिये कि सारे विधान-मण्डल विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगा देते हैं और उनका युक्तिपूर्वक नियमन करना तथा उनमें किसी प्रकार का समन्वय स्थापित करना आवश्यक प्रतीत होता है तो किसी में भी ऐसा करने की शक्ति निहित न होगी। अनुच्छेद 16 द्वारा वह शक्ति संसद् को दी जाती है। संसद् प्रान्त के

[माननीय श्री के. संतानम्]

अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती जहां तक कि उसी प्रान्त विशेष के भीतर व्यापार तथा वाणिज्य का सम्बन्ध है।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** वह अधिकार अनुच्छेद 245 में दिया गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अनुच्छेद 245 में लिखा है कि: "इस संविधान के अनुच्छेद 243 और 244 के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये संसद् विधि द्वारा ऐसा प्राधिकारी नियुक्त करेगी जैसा वह उपयुक्त समझे और इस प्रकार नियुक्त प्राधिकारी को ऐसी शक्तियां और ऐसे कर्त्तव्य प्रदान करेगी, जैसे वह आवश्यक समझे"। यह केवल आनियमन के प्रयोजनार्थ है। विभिन्न विधान-मण्डलों द्वार आरोपित किये जाने वाले प्रतिबन्धों के आनियमन, अथवा एकीकरण अथवा उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये इसमें कोई विधायिनी शक्ति नहीं दी गई है, और इसीलिये वह शक्ति अनुच्छेद 16 द्वारा दी गई हैं। श्री सुब्रह्मण्यम् कहते हैं कि उस अवस्था में इसका यह अर्थ है कि प्रान्त के क्षेत्र से सारी शक्ति निकाल दी गई है। मैं कहता हूं कि ऐसी बात नहीं है।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** मेरा तर्क यह है; मूलाधिकार में संसद् अथवा राज्य के विधान-मण्डल को शक्ति प्रदान करने का प्रश्न नहीं है; इसमें सदा संघीय संसद् तथा राज्य के विधान-मण्डल दोनों से शक्ति छीन लेने का प्रश्न होता है। केवल यही मूलाधिकार है। मूलाधिकारों का शक्तियों के वितरण से कदापि सम्बन्ध नहीं होता।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं नहीं समझता कि श्री सी. सुब्रह्मण्यम् की बात ठीक है। मूलाधिकार में ऐसा प्रावधान भी हो सकता है कि राज्य का विधान-मण्डल किसी विशेष मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगा और उसमें केवल संसद् ही हस्तक्षेप कर सकती है; अथवा मूलाधिकार ऐसा भी हो सकता है कि संसद् किसी विषय में हस्तक्षेप नहीं करेगी और केवल राज्य का विधान-मण्डल ही उसमें हस्तक्षेप कर सकता है। शक्तियों का वितरण तथा उसके परिणामस्वरूप नागरिकों पर जो प्रभाव पड़ेगा वह भी व्यक्ति को प्राप्त होने वाले मूलाधिकारों का ही विषय है। यदि मूलाधिकारों के सारे खण्डों पर ध्यान से विचार किया जाये तो आप देखेंगे कि कई स्थान पर हमने ऐसा प्रावधान रखा है कि इस विषय में संसद् हस्तक्षेप कर सकती है किन्तु राज्य का विधान मण्डल हस्तक्षेप नहीं कर सकता, अतएव मेरे विचार में व्यापार के स्वातन्त्र्य के लिये अनुच्छेद 16 नितान्त

आवश्यक है और इसके बिना सारी रूपरेखा इतनी पेचीदी बन सकती है कि प्रांतीय विधान-मण्डल जैसा भी प्रतिबन्ध लगाना चाहे वैसा ही लगा सकेगा तथा मनमाना कानून बना सकेगा, और इससे भारत का आन्तरिक व्यापार कुण्ठित तथा बाधित हो सकता है। अतएव मेरा सुझाव है कि अनुच्छेद 16 रहना चाहिये।

***श्री एम. अनन्तशयमन आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं देखता हूं कि अनुच्छेद 16 में न कोई असंगति है और न यह अनावश्यक ही है। मैं अपने मित्र श्री सुबह्मण्यम् के साथ सहमत हूं कि यदि आंतरिक व्यापार के सारे क्षेत्र का आनियमन संबंधित राज्यों अथवा संसद् द्वारा किया जा सकता हो और कुछ भी अधिकार न बचता हो, तो फिर मूलाधिकार की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि कोई अधिकार शेष नहीं बचता जैसा कि वह समझते हैं अथवा आशंका करते हैं। अभिव्यक्ति आदि की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कुछ अधिकार अनुच्छेद 13 में प्रावहित है। अनुच्छेद 16 द्वारा भारत के राज्य-क्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य तथा समागम के अबाध अधिकार की प्रतिभूति दी गई है। वही मूलाधिकार है। अनुच्छेद 244 में राज्यों के पक्ष में अपवाद रखे गये हैं तथा अन्य अनुच्छेदों में संसद् द्वारा बनाये गये किसी कानून के पक्ष में अपवाद रखे गये हैं। जहां तक संसद् द्वारा बनाये गये कानूनों का सम्बन्ध है, संसद् केवल उसी सीमा तक कार्य कर सकती है, जहां तक कि प्रथम सूची के अनुसार उसे कुछ शक्तियां प्रदान की गई हैं। जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है, वे द्वितीय सूची के अन्तर्गत आ सकते हैं। राज्यों की सूची की प्रविष्टि संख्या 32 में राज्यों के भीतर के व्यापार तथा वाणिज्य की चर्चा है। उधर जहां तक राज्यों के भीतरी व्यापार तथा वाणिज्य का सम्बन्ध है, इस पर राज्यों का अनन्य क्षेत्राधिकार है। मैं केवल एक दृष्टान्त दे रहा हूं कि यह अनुच्छेद मूलाधिकारों के अध्याय में क्यों अपेक्षित है।

मेरे प्रदेश (प्रान्त) में दो जिले हैं—एक उत्तर में है और दूसरा दक्षिण में, उनमें कपास पैदा होती है, एक आन्ध्र में है और दूसरा तमिलनाडु में है। आज कल दक्षिण के प्रगतिशील जिले में अनेक रुई की मिलें हैं जिनमें सब कपास प्रयुक्त हो जाती है तथा वहां से प्रान्त के अन्य भागों को सूत तथा कपड़ा भेजा जाता है। कपास उगाने वाले उत्तरी जिले में सूत की मिलें स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हम यह मान लेते हैं कि मद्रास सरकार कुछ प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न करती है तथा कहती है कि कुड्डापह में जो नई सूत की मिल स्थापित की जाने वाली है उसका सूत अन्य जिलों में, जहां कि कोयम्बटूर की मिलों का

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

सूत जाता है, नहीं भेजा जायगा। यहां ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो इसे रोक सके। यदि इस सम्बन्ध में कोई अनुबन्ध नहीं रखा जाता तो किसी राज्य को अथवा किसी राज्य विशेष को ज़िले-ज़िले के बीच विभेद करने से रोकने वाली कोई चीज़ नहीं है। अनुच्छेद 243 के अन्तर्गत हम राज्य-राज्य के बीच कोई भेदभाव नहीं कर सकते। किन्तु राज्य के भीतर ही किसी राज्य को विभेद करने के अधिकार का प्रयोग करने से रोकने वाली कोई चीज़ नहीं है। इसकी सम्भावना है। हम बम्बई प्रदेश को ही ले लें। अहमदाबाद में कपड़े की मिलें हैं। बम्बई में भी कुछ मिलें हैं। अब विधान-मण्डल को इसका अधिकार है कि वह बम्बई प्रदेश के दक्षिणी भाग को अपने साधनों का विकास करने से सर्वथा रोकने के लिये ऐसा प्रतिबन्ध लगा दे कि वह प्रदेश अपनी कोई भी सामग्री बम्बई प्रदेश के अन्य भागों को नहीं भेजेगा।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह बात 13 (छ) में आ जाती है?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** 13(छ) में लिखा है:

"कोई व्यवसाय, वृत्ति, वाणिज्य तथा व्यापार करने का"

आपको किसी वस्तु का उत्पादन करके वृत्ति करने का अधिकार है किन्तु ऐसा नहीं है कि आप किसी भी शर्त के बिना कोई व्यापार कर सकते हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): इसका सम्बन्ध व्यापार तथा समागम से है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** इसका सम्बन्ध व्यापार तथा वाणिज्य से है और तीसरा एक शब्द "समागम" भी है। मैं इसको भी लेता हूं। जहां तक व्यापार तथा वाणिज्य का सम्बन्ध है, मेरा सविनय निवेदन है कि वह अनुच्छेद 13 (छ) में नहीं आता। अब हम उपखण्ड (6) को लेते हैं, जिसमें लिखा है:

"(6) उक्त खण्ड के उपखण्ड (छ) की किसी बात से लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर आयंत्रणों का आरोप करने वाली और विशेषतया किसी व्यवसाय, वृत्ति, वाणिज्य अथवा व्यापार करने के लिये व्यावसायिक अथवा प्रौद्योगिक (टेक्निकल) योग्यताओं का

विनिधान अथवा किसी प्राधिकारी को विनिधान करने की शक्ति प्रदान करने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।"

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आप किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। यह बात खण्ड (छ) के अन्तर्गत है। यह अनुच्छेद 13 के खण्ड 6 के अन्तर्गत आता है। अतः अनुच्छेद 16 जैसे एक स्वतन्त्र खण्ड की आवश्यकता है जिसमें प्रत्येक मनुष्य को भारत के सारे भागों में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की स्वतंत्रता दी गई है।

जहां तक "समागम" शब्द का सम्बन्ध है, व्यापार तथा वाणिज्य को छोड़ कर अनेकों प्रयोजनों के लिये एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को समागम आवश्यक है। अनुच्छेद 13 में अथवा अन्य किसी स्थान पर मूलाधिकारों में इसका भी प्रावधान नहीं किया गया है।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** यह तो पूर्णतया संसद् का ही क्षेत्र है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** राज्यों के सम्बन्ध में क्या स्थिति है?

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** आप इनमें अन्तर नहीं कर सकते।

***उपाध्यक्ष:** मुझे भय है कि जिन लोगों को मुझ से अधिक अनुभव है वे संसदात्मक कार्यप्रणाली को बहुत भंग करते हैं तथा अनियमितता से काम करते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** अनुच्छेद 243 में लिखा है:

"जल, थल अथवा वायु द्वारा किये जाने वाले व्यापार अथवा वाणिज्य सम्बन्धी किसी विधि अथवा आनियम द्वारा एक राज्य की अपेक्षा दूसरे राज्य को कोई अधिमान न दिया जायेगा और न ही राज्यों के बीच कोई विभेद किया जायेगा।"

इससे राज्य-राज्य के बीच विभेद को रोका जायेगा। यहां ऐसा कोई अनुच्छेद नहीं है जिसमें कहा गया है कि आपको किसी राज्य के दो भागों के बीच विभेद नहीं करना चाहिये। अनुच्छेद 16 में यह भी आ जाता है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि किसी राज्य के दो क्षेत्रों के बीच विभेद के विषय में कोई प्रावधान नहीं है। और कम से कम इसके लिये ही यह अनुच्छेद आवश्यक है।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, यदि मैं श्री सुब्रह्मण्यम् की बात को ठीक-ठीक समझा हूं तो मेरे विचार में उनको अनुच्छेद 16 पर आपत्ति नहीं है, किन्तु यह अनुच्छेद जिस स्थान पर रखा गया है उस पर उन्हें आपत्ति है। वे कहते हैं कि जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, इसकी आवश्यकता हो सकती है तथा इससे लाभ हो सकता है, किन्तु इसे मूलाधिकारों में स्थान नहीं मिलना चाहिये। और यदि मैं उनकी बात को ठीक-ठीक समझा हूं तो उनका दूसरा तर्क यह है कि इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 244 के अधीन रखा गया है। इससे अनुच्छेद 16 सर्वथा प्रभावशून्य बन सकता है, और उनका कहना है कि यदि अनुच्छेद 244 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाये तो इसमें से कुछ भी अधिकार अवशिष्ट नहीं बचता। मेरे विचार में उनकी वक्तृता का मैंने जो यह सारांश निकाला है वह ठीक है।

अब, मैं इस युक्ति को पूर्णतया समझता हूं कि अनुच्छेद 16 मूलाधिकारों की सूची में उपयुक्त नहीं है, और कुछ हद तक मैं श्री सुब्रह्मण्यम् से सहमत हूं। किन्तु मैं उनको यह बताऊंगा कि इस चीज़ को मूलाधिकारों में रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी। मेरे मित्र श्री सुब्रह्मण्यम् को स्मरण होगा कि जब विधान-परिषद् आरम्भ हुई थी, तब हमने कुछ प्रतिबन्धों के अधीन कार्य आरम्भ किया था। एक प्रतिबन्ध यह था कि रियासतें केवल तीन विषयों के सम्बन्ध में ही संघ में समाविष्ट होंगी, वे विषय थे वैदेशिक मामले, सुरक्षा तथा यातायात। वे किसी अन्य विषय में संघीय संसद् को अपनी विधायिनी तथा अधिशासी शक्ति के विस्तार की अनुमति नहीं देते थे। अतएव वे समझ जायेंगे कि मसौदा-समिति तथा विधान-परिषद् को इस गम्भीर प्रतिबन्ध के अधीन काम करना था। एक ओर तो यह समझा जाता था कि यदि सारे भारत में व्यापार तथा वाणिज्य अबाध नहीं है तो कोई अखिल भारतीय संघ बनाने से कुछ लाभ नहीं होगा तथा कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। यही सामान्य दृष्टिकोण था। दूसरी ओर पता यह लगा कि जहां तक रियासतों की स्थिति का सम्बन्ध है, जिसकी कि मैंने पहले चर्चा की है, रियासतें सारे भारत के व्यापार तथा वाणिज्य को संघीय संसद् की विधायिनी शक्ति के अधीन रखने के लिये तैयार नहीं थीं। या दूसरे शब्दों में संक्षेप से कहा जाये तो वे व्यापार तथा वाणिज्य को प्रथम सूची में स्थान देने के लिये तैयार न थीं। यदि व्यापार तथा वाणिज्य को प्रथम सूची में समाविष्ट करना हमारे लिये सम्भव होता, जिसका अर्थ यह है कि संसद् को भारत के भीतर वाणिज्य के विषय में कानून बनाने की अधिशासी शक्ति होती, तो हमें व्यापार तथा वाणिज्य को मूलाधिकारों के अनुच्छेद 16 के अधीन लाना आवश्यक नहीं होता। किन्तु

विधान-परिषद् के आरम्भ होने के समय जो मूल सिद्धान्त थे उनके कारण वह मार्ग तो बन्द था, अतएव देश भर में व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में समन्वय स्थापित करने के लिये हमें किसी स्थान पर यह बात रखनी थी। पर्याप्त विचार के पश्चात् हमें लोगों के बहुमत की इस इच्छा को पूरी करने के लिये कि भारत भर में व्यापार तथा वाणिज्य स्वतन्त्र होना चाहिये, केवल यही उपाय दिखाई दिया कि इसे मूलाधिकारों में रख दिया जाये। यही कारण है कि हमने सोचा कि व्यापार तथा वाणिज्य को मूलाधिकारों के अन्तर्गत रखने के अतिरिक्त हमारे पास कोई उपाय नहीं था, चाहे यह कैसा भी अद्‌भुत दिखाई पड़े। मेरे विचार में मेरे मित्र श्री सुब्रह्मण्यम् को इस बात से इस विषय में संतोष हो जायेगा कि हमने मूलाधिकारों की सूची में व्यापार तथा वाणिज्य को यह स्थान क्यों दिया, यद्यपि सिद्धान्त रूप से मैं मानता हूं कि इस विषय को मूलाधिकारों में रखना उपयुक्त नहीं है।

उनका दूसरा तर्क यह है कि व्यापार तथा वाणिज्य को अनुच्छेद 244 के अधीन रख दिया गया है इससे मूलाधिकार को ही प्रायः समाप्त कर दिया गया है। मेरे विचार में मैं न्यायपूर्वक कह सकता हूं कि मेरे मित्र श्री सुब्रह्मण्यम् ने या तो उस अनुच्छेद को पढ़ा ही नहीं है या उसका गलत अर्थ समझा है। अनुच्छेद 244 का तो बहुत सीमित क्षेत्र है। इसमें तो केवल इतना ही कहा गया है कि प्रान्तीय विधान-मण्डलों को अन्ताराज्य व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में तथा अन्य किसी राज्य में निमित अथवा वहां से लाये गये सामान के प्रवेश पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति दी गई है, पर शर्त यह है कि वह कानून ऐसा होगा कि उसके द्वारा उस राज्य में निर्मित सामान तथा उस राज्य के बाहर से आयात किये हुये सामान के बीच कोई अन्तर अथवा विभेद न किया जाये। अब मुझे विश्वास है कि वह सहमत होंगे कि यह एक अत्यन्त सीमित कानून है। इसके द्वारा भारत के भीतर व्यापार, वाणिज्य तथाा समागम का अधिकार नहीं छिन जाता, यह अधिकार तो अबाध रहेगा।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** खण्ड में लिखा है कि किसी राज्य के लिये यह वैध होगा कि वह व्यापार, वाणिज्य अथवा यातायात स्वातंत्र्य पर कानून द्वारा ऐसे युक्तियुक्त आयंत्रण लगाये जो लोकहित के लिये अपेक्षित हों।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, किन्तु युक्तियुक्त आयंत्रणों का यह अर्थ नहीं है कि वे ऐसे हो सकते हैं जिनसे वाणिज्य की स्वतंत्रता तथा समता सर्वथा नष्ट हो जाये। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

श्रीमान्, इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि विद्यमान रूप में यह अनुच्छेद सर्वथा ठीक है और मैं इसका समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब इस अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

हमारे सामने प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 16 विधान का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 16 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 17

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 17 को लेते हैं। परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 17 को विधान का अंग समझा जाये। इस अनुच्छेद पर बहुत से संशोधन आये हैं और उन पर अब विचार किया जायेगा। मेरी सूची में प्रथम संशोधन संख्या 543 है। यह नकारात्मक है, अतएव इसे अभी स्थगित रखा जाता है।

इस संशोधन पर एक संशोधन है वह पंचम सूची में न. 93 का है और श्री रामचन्द्र उपाध्याय के नाम से है।

(श्री कामत द्वारा बाधा)

हां, श्री कामत, आप यह कह रहे हैं कि अन्य संशोधन भी हैं?

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): हां, श्रीमान् संख्या 544 है।

***उपाध्यक्ष:** किन्तु मैंने अभी उसकी पुकार तो नहीं की है। मैं संशोधन संख्या 543 और 543 पर जो संशोधन नं. 93 है, उसे ले रहा था।

***श्री एच.वी. कामत:** किन्तु, श्रीमान्, वह पेश ही नहीं हुआ है। फिर उस संशोधन पर कोई संशोधन कैसे पेश किया जा सकता है अथवा पुकारा जा सकता है?

***उपाध्यक्षः** क्या आप मेरी त्रुटि बता रहे हैं? क्या मैं पहले यह स्वीकार नहीं कर चुका कि मैं इन सब नियमों से अनभिज्ञ हूं? क्या हर बार इसकी चर्चा करना आवश्यक है?

अब हम संशोधन संख्या 544 को लेते हैं जो काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम का है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं आपको परामर्श देने का ज़रा भी दम नहीं भरता।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'17. Neither slavery nor involuntary servitude such as *begar* except as a punishment for crime shall exist within the Union State.'

(17. संघ-राज्य में अपराध के लिये दण्ड के रूप में होने के सिवाय किसी अन्य रूप में दासता अथवा बेगार जैसी अनिच्छापूर्वक सेवा का अस्तित्व नहीं होगा।)"

श्रीमान्, मैं जो संशोधन पेश कर रहा हूं उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। किन्तु अनुच्छेद 17(1) में ऐसे मामले नहीं आते जिनमें कि बन्दियों से काम लिया जाता है, उनसे उनकी स्वतंत्र इच्छा के विरुद्ध काम लिया जाता है। यदि इस अनुच्छेद को उसी रूप में रहने दिया जाता है तो जेल के अधिकारी बन्दियों से काम नहीं ले सकेंगे। अतः मैंने "अपराध के लिये दण्ड के रूप में होने के सिवाय" ये शब्द रख दिये हैं। यहां मैं यह बता दूं कि ऐसा ही एक अनुच्छेद अमरीका के विधान में भी है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 545 । श्री दामोदर स्वरूप सेठ!

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 1 के आरम्भ में ये शब्द जोड़ दिये जायें:

'Servitude and serfdom in all forms as well as.'"

(सभी तरह की दासवृत्ति और दासत्व तथा)

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

मैं नहीं समझता कि यह ऐसी बात है जिस पर किसी को अधिक बोलने की आवश्यकता हो। अतएव मैं केवल यही निवेदन करना चाहता हूं कि कुछ रियासतों में किसी न किसी रूप में दासवृत्ति तथा दासत्व प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण में देवदासी के समान प्रथाओं ने भी घर कर लिया है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): Servitude (दासत्व) से भिन्न serfdom (दासवृत्ति) क्या है?

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य आपसे जानना चाहते हैं कि serfdom का क्या अर्थ है।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ:** यह एक प्रकार का servitude ही है, अथवा मैं कह सकता हूं कि यह दासता है, जो रियासतों में प्रचलित है।

***उपाध्यक्ष:** शायद serfdom और servitude के बीच अन्तर के विषय में यह इन्हीं के विचार हैं।

अगले तीन संशोधन हैं संख्या 546, 547 तथा 548 के, जिनमें से सबसे अधिक व्यापकार्थ सूचक 546 है, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 1 में 'मानव-पणन और बेगार' इन शब्दों के स्थान पर 'मानव-पणन अथवा धर्म के नाम पर देवदासी बनाने या किसी अन्य प्रकार की दासता एवं अपमान के जीवन में डालने के लिये मानव का अर्पण तथा बेगार' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस प्रस्ताव की सिफारिश करते हुये मैं यह बताना चाहता हूं कि 'मानव-पणन' इन शब्दों से मैं यह समझता हूं कि लोगों को वस्तु के समान बेचने और खरीदने की सम्भावना है अतएव इसका वर्जन करना चाहिये। साधारणत: इसका आशय गुलामी से लिया जाता है जैसा कि वह प्राचीन काल में प्रचलित थी और अर्वाचीन काल तक यूरोप तथा अमरीका के तथाकथित सभ्य देशों में भी प्रचलित थी। यह ठीक ही है कि ऐसा व्यापार बन्द कर देना चाहिये।

किन्तु मानव-पणन प्राचीन काल की गुलामी प्रथा तक ही सीमित नहीं है। यह अब भी होता है—शायद इस परिषद् के भोले सदस्यों को जितना पता है उससे

कहीं अधिक बड़े पैमाने पर होता है और श्वेत दासों के व्यापार के नाम से होता है। एक देश से दूसरे देश को आयात अथवा निर्यात करने के लिये नवयुवतियों का क्रय-विक्रय होता है, और उन्हें सदा के लिये पाप-व्यापार के अड्डे के मालिकों को सौंप दिया जाता है और स्थायी रूप में उनको दासियां अथवा बांदियां बना दिया जाता है जो कि सम्भवत: सारे जीवन के लिये होता है।

निस्संदेह यह व्यापार साधारण कानूनी कण्ट्राक्टों के आधार पर ही किया जाता है, जिसमें दोनों ही पक्ष अपनी मर्जी से ऐसा करते हैं। कानूनी रूप से यह कण्ट्राक्ट कहां तक जायज है यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु इतना मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि ऐसे कण्ट्राक्ट समस्त सभ्य मानव जगत की दृष्टि में एक भयंकर अपराध प्रतीत होते हैं।

इसलिये मैं चाहता हूं कि इस संशोधन से यह स्पष्ट समझ लिया जाना चाहिये कि 'मानव-पणन' में केवल भूतकालीन गुलामों का क्रय-विक्रय ही शामिल नहीं है वरन् यह नई प्रकार की गुलामी भी शामिल है, जो वास्तव में बड़े पैमाने पर व्यापारिक रूप में होने वाला पाप-कृत्य है, जिसे तथाकथित सभ्य देशों ने सुप्रचलित कर दिया है या मैं कह सकता हूं कि इसे एक व्यवसाय बना लिया है।

यह चीज़ शायद इस खण्ड के प्रारूपकों के मस्तिष्क में नहीं रही होगी। किन्तु मेरे विचार में परिषद् के लिये इसे ध्यान में रखना तथा इस संशोधन को मान लेना अच्छा होगा, ताकि ऐसे व्यापार को पूर्णतया, स्पष्टतया तथा लिखितरूप में वर्जित कर दिया जाये।

निस्संदेह मैंने इस संशोधन को उस विशेष प्रकार की दासता को ही ध्यान में रख कर लिपिबद्ध किया है जो इस देश में व्यापक पैमाने पर प्रचलित है, जिसमें धर्म के नाम पर नवयुवतियों को मन्दिरों के अर्पण कर दिया जाता है और कच्ची उम्र से ही इन्हें दुराचारपूर्ण व्यापार के काम में लाया जाता है। मेरे विचार में इसे भी बन्द करना चाहिये। ऐसे व्यापार करने वालों को धर्म के नाम का आश्रय नहीं लेना चाहिये, और विधान को इसे रोकने के विषय में कुछ भी लिहाज नहीं करना चाहिये। यदि मैं इस अनुच्छेद की भावना को ठीक प्रकार से समझता हूं तो इसके द्वारा सब प्रकार का मानव-पणन वर्जित होगा।

बलात् श्रम निस्संदेह एक बुराई है; और इसका एक विशेष रूप जो बेगार कहलाता है जिसका अर्थ है कि बिना वेतन के ही आज्ञानुसार अनिवार्य कार्य करना, यह भी बन्द होना चाहिये। किन्तु और चीज़ों से भी अधिक इस अत्यन्त

[प्रो. के.टी. शाह]

दुराचारपूर्ण व्यापार पर इस संशोधन में ज़ोर देना चाहिये, मैं कहता हूं कि यह अमानवीय व्यापार है जो उससे कहीं अधिक बड़े पैमाने पर प्रचलित है, जितना कि शायद परिषद् समझती है और इसी कारण मैं यह संशोधन परिषद् में पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 547 ।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं किन्तु बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** मैं आपको बोलने की अनुमति नहीं दे सकता। क्या आप चाहते हैं, इस पर मत लिया जाये?

***श्री बी. दासः** नहीं, श्रीमान्, मैं इसे पेश नहीं करता। क्या आप मुझे एक शब्द कहने की अनुमति नहीं देंगे?

***उपाध्यक्षः** मैं यह नहीं कर सकता क्योंकि इससे सारा परिषद् में व्यग्रता फैलेगी। आपको अपनी बारी पर बोलना होगा

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 548 ।

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर** (पूर्वी पंजाब : सिख): श्रीमान् मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 1 में 'मानव-पणन' इन शब्दों के आगे 'जिसमें वेश्यावृत्ति भी शामिल है' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

***उपाध्यक्षः** क्या आप इसे पेश करना चाहते हैं?

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिरः** मैं तो सिर्फ कुछ कहना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** मैं यह नहीं कह सकता कि जिन-जिन सदस्यों ने संशोधन भेजे हैं उनमें से प्रत्येक को बोलने का समय मिलेगा। मुझे स्पष्ट कह देना है, क्योंकि हमें अब शीघ्रता करनी है।

(संशोधन नं. 549, 550 और 552 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 551। यह केवल शब्दिक संशोधन है अतएव इसकी अनुमति नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 553 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 554। यह केवल शाब्दिक संशोधन है अतएव इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 555, 558 तथा 560 पर एक साथ विचार होगा। मैं संख्या 555 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं संशोधन संख्या 555 को पेश नहीं कर रहा हूं।

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मान** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 2 के अन्त में 'और उसके लिये समुचित क्षति-पूर्ति देगा' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, मेरे संशोधन के जोड़ देने से खण्ड 2 इस प्रकार बन जायेगा:

"इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को लोक-प्रयोजनार्थ अनिवार्य सेवा का आरोप करने में अवरोध न होगा। ऐसी सेवा का आरोपण करने में प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर राज्य कोई विभेद न करेगा और उसके लिये समुचित क्षतिपूर्ति देगा।"

बेगार मजदूरों से लिया गया एक प्रकार का बलात्श्रम है, और हम इसे देश में बन्द करना तथा रोकना चाहते हैं। हमारा आशय यह है कि श्रमिक से उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं कराना चाहिये, किन्तु इस सम्बन्ध में एक अपवाद रखा गया है कि राज्य लोक-प्रयोजनार्थ अनिवार्य सेवा लागू कर सकता है। अब यदि हम यह मान लें कि राज्य को किसी सम्पत्ति की आवश्यकता है तथा वह किसी नागरिक को उस सम्पत्ति से वंचित करता है तो यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि राज्य को इसके लिये क्षतिपूर्ति अर्थात् समुचित मूल्य देना चाहिये। इसी प्रकार जब राज्य किसी श्रमिक को उसके श्रम से वंचित करता है; (अब मेरा विश्वास है, श्रमिक के लिये श्रम उसकी सम्पत्ति है) तो मैं चाहता हूं कि राज्य को उसके लिये क्षतिपूर्ति देनी चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 2 में 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' यह शब्द रख दिये जायें।"

आरम्भ में ही मैं यह कह देना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद में बेगार शब्द की, जो कि अंग्रेज़ी का शब्द नहीं है, कहीं परिभाषा नहीं दी गई है और अच्छा होगा यदि हम इसकी परिभाषा इस अनुच्छेद में नहीं तो विधान में कहीं अन्यत्र रख दें। अब संशोधन पर आता हूं। मेरे विचार में 'लोक' शब्द से इस अनुच्छेद के खण्ड 2 का आशय अथवा महत्त्व इतना स्पष्ट नहीं होता जितना कि "सामाजिक अथवा राष्ट्रीय" शब्द से हो जायेगा। हम सब जानते हैं कि राज्य की सेवाओं—सरकारी सेवाओं—का ही लोक सेवाओं के नाम से उल्लेख किया जाता है, किन्तु राष्ट्रीय सेवा अथवा सामाजिक सेवा का लोक सेवा शब्द से अधिक विस्तृत, अधिक उच्च, अधिक आशयपूर्ण अभिप्राय होता है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि राष्ट्रीय योजना निर्माण समिति की कार्यवाही की रिपोर्ट में, जिसे कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने स्थापित किया था तथा जिसका सभापतित्व पं. जवाहरलाल नेहरू ने किया था और जिसमें 3, 4 वर्ष से अधिक समय तक मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने महत्त्वपूर्ण सेवा की थी, उस रिपोर्ट में यह सुझाव रखा गया था कि सामाजिक सेवा के लिये सब नागरिकों की अनिवार्य भर्ती होनी चाहिये; और पं. नेहरू तो इस विषय पर बोलते हुये इतना तक कह गये थे कि किसी छात्र को विद्यालय की उपाधियां तब तक नहीं मिलनी चाहिये जब तक कि वह छः मास तक किसी प्रकार की सामाजिक सेवा न कर ले। वहां "सामाजिक सेवा" शब्द प्रयुक्त हुआ था, "लोक सेवा" शब्द नहीं। "राष्ट्रीय" शब्द "सामाजिक" शब्द से भी अधिक आशयपूर्ण है। मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कल इस प्रकार की राष्ट्रीय सेवा की चर्चा की थी। जब कोई युद्ध होगा, जब कोई संकट-काल आयेगा, जब राज्य के स्थायित्व पर संकट आयेगा, जब कोई विप्लव होगा, विशेषतया उसी समय राष्ट्रीय सेवा का प्रश्न उठेगा और उसी समय नागरिकों के शस्त्र ग्रहण करने के कर्त्तव्य का भी प्रश्न उठेगा, जिसकी कि कल चर्चा की गई है। मैं कहता हूं कि ऐसी अवस्थाओं में अनिवार्य भर्ती होनी चाहिये, मेरा ऐसा आशय नहीं है कि सैनिक सेवा के लिये ही ऐसा हो, किन्तु राष्ट्रहित में किसी प्रकार की सेवा के निमित्त भी ऐसा होना चाहिये। यहां तक कि जो लोग

अन्तर्विवेक से प्रेरित होकर इस सम्बन्ध में आपत्ति करते हैं उन्हें भी किसी प्रकार की सेवा के लिये कहा जाना चाहिये, चाहे उन्हें शस्त्र ग्रहण करने तथा लाम पर जाने के लिये भले ही न कहा जाये।

यहां मैं यह भी सुझाव रखना चाहता हूं कि यहां केवल धर्म, प्रजाति, जाति अथवा वर्ग का ही नहीं, अपितु लिंग का भी विभेद नहीं होना चाहिये। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं एक चेतावनी देना चाहता हूं और वह यह है कि शस्त्र-धारण करने का कर्त्तव्य बिना किसी शर्त के नहीं होना चाहिये। मेरे विचार में अगर आप शस्त्र-धारण का अधिकार दिये बिना ही शस्त्र-धारण के कर्त्तव्य को आरोपित करते हैं तो यह तानाशाही (Totalitarian) राज्य, पुलिस राज्य अथवा किसी सैनिक-एकाधिपत्य का एक चिह्न होगा, न कि उस ऐसे जनतंत्रात्मक राज्य का जैसा कि अपनी प्रस्तावना के अनुसार हम अपने भारतीय राज्य को बनाना चाहते हैं। शस्त्र ग्रहण करने के कर्त्तव्य को पालन करवाना तो राज्य के लिये 'मरने' की भावना अथवा सिद्धान्त की बाह्य अभिव्यंजना है। हमें राज्य के लिये मरना चाहिये, इस सिद्धांत की ही अभिव्यक्ति है शस्त्र-धारण करने का कर्त्तव्य। किन्तु प्रत्येक नागरिक को इससे भी उच्चतर कर्त्तव्य का पालन करना होता है, और वह कर्त्तव्य है राज्य के लिये 'जीना'—राज्य के लिये जीना, केवल राज्य के लिये मरना ही नहीं—और राज्य के लिये जीने के इस सिद्धान्त का सम्बन्ध है शस्त्र-धारण करने के अधिकार से।

अन्त में मैं सुझाव रखता हूं कि इस अनुच्छेद के खण्ड (2) की भाषा में परिवर्तन कर दिया जाये तथा 'लोक सेवा' इस शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' यह शब्द रख दिये जायें। यदि 'लोक सेवा' ही होता तो मुझे कुछ आपत्ति न होती किन्तु 'लोक प्रयोजनार्थ सेवा' उचित नहीं है, और मेरे विचार में इस खण्ड का महत्त्व तथा आशय अधिक अच्छी प्रकार व्यक्त होगा यदि हम इस प्रकार कहें "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को सामाजिक अथवा राष्ट्रीय प्रयोजनार्थ अनिवार्य सेवा का अरोप करने में अवरोध न होगा।" श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

(संशोधन नं. 557 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) में, 'प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर' इन शब्दों के पहले 'केवल' शब्द जोड़ दिया जाये।"

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, यह बहुत छोटा-सा संशोधन है किन्तु मेरे विचार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

"'...in imposing such service the State shall not make discrimination on the ground only of race, religion, caste or class.'

(...ऐसी सेवा का आरोपण करने में केवल प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर राज्य कोई विभेद न करेगा।)"

मैंने इसे पेश तो कर दिया है फिर भी इसका महत्त्व इतना स्पष्ट है कि मुझे भरोसा है कि प्रारूपक इसे स्वीकार कर लेंगे।

***उपाध्यक्ष:** अब अनुच्छेद पर विस्तृत रूप से वाद-विवाद हो सकता है। ज्ञानी गुरुमुखसिंह अब बोलेंगे। मैं उन्हें पांच मिनट देता हूं।

ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर: सभापति जी, आर्टिकिल 18 विधान में एक अच्छी दफा है मगर उसमें यह जो दो एक कमियां हैं, वह जरूर दूर होनी चाहियें। इस सिलसिले में मैंने एक अमेण्डमेण्ट पेश किया था जिस पर मुझ को बोलने का मौका नहीं मिला। मैं यह कहना चाहूंगा कि यह प्रोस्टीट्यूशन हिन्दुस्तान की सभ्यता के बिल्कुल मुताबिक नहीं है। यह मगरब से आई थी और मगरबी हाकिमों के यहां से चले जाने के बाद यह ज़रूर खत्म हो जाना चाहिये। आर्टिकिल 17 क्लाज 1 में (Traffic in human beings) के बाद 'प्रोस्टीट्यूशन' का लफ्ज ज़रूर include होना चाहिये। तभी इस क्लाज की शान ज्यादा बढ़ती है और कमी दूर हो जाती हैं। दूसरी तजवीज़ जो सरदार भूपेन्द्रसिंह मान ने पेश की है यह बड़ी अच्छी बात है। हुकूमत पब्लिक की भलाई के पेशनजर अगर कोई जबरी काम ले भी तो काम करने वाले को मुनासिब एवजाना ज़रूर मिलना चाहिये। यह बहुत ही अच्छी बात है जो इस आर्टिकिल की क्लाज 2 में रखी गई है कि बेगार लेते वक्त किसी फिरका, मजहब, जात या तबका का लिहाज न रखा जायेगा। सरकार को बेगार लेने के जो अख्तियार इस क्लाज में दिये गये हैं, वह कमोबेश पहले भी मौजूद हैं और अब भी सरकारी ओहदेदार अपने रौब की वजह से बेगार लेते हैं। अगर इसमें यह बात आ जाये कि इसका मुआवजा दिया जायेगा तो यह कमी भी दूर जो जाती है और इस क्लाज की कद्रोकीमत बढ़ जाती है। इससे पहले बेगार का रिवाज गरीबों के लिये बवाल था। अब यह

क्लाज एवजाना देने के लफ्ज जाने के बगैर पास हो जाये तो ठीक नहीं बैठेगी। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं क्योंकि प्रधान साहब ने हिदायत कर दी है। इसलिये ज्यादा वक्त न लेते हुये सिर्फ यह दो बातें ही कह सका हूं। अव्वल यह कि प्रोस्टीट्यूशन की लानत इस देश से दूर होनी चाहिये। दूसरी यह कि बेगार का मुआवज़ा ज़रूर दिया जाये।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मैं परिषद् के मूल्यवान समय में से केवल एक दो मिनट ही लूंगी। मैं इस अनुच्छेद पर कुछ शब्द कहना चाहती हूं। प्रोफेसर शाह के संशोधन का आशय यह है कि 'मानव-पणन और बेगार' इन शब्दों के स्थान पर 'मानव-पणन अथवा धर्म के नाम पर देवदासी बनाने या किसी अन्य प्रकार की दासता एवं अपमान के जीवन में डालने के लिये मानव का अर्पण तथा बेगार' ये शब्द रख दिये जायें।

श्रीमान्, धर्म के नाम पर देवदासियों के अर्पण की कुप्रथा से यदि किसी प्रांत को दु:ख भोगना पड़ा है तो वह मद्रास प्रान्त है। मद्रास में बहुत समय तक यह प्रथा बहुत ही बुरे रूप में प्रचलित रही है। मैं नहीं जानती कि इस प्रकार की प्रथा किसी रूप में अन्य किसी प्रान्त में भी है अथवा नहीं। किन्तु हम जानते हैं कि यह कई रूपों में प्रचलित थी। किन्तु यद्यपि मैं इस संशोधन के पेश करने में उनके उद्देश्य की सराहना करती हूं और इस बुराई को दूर करने की आवश्यकता अनुभव करने के लिये उनको धन्यवाद देती हूं, किन्तु मेरे विचार में यह संशोधन आवश्यक नहीं है। मद्रास ने कुछ वर्ष पूर्व एक कानून पास करके इस प्रथा का वर्जन पहले ही कर दिया है। यह वहां अब प्रचलित नहीं है। यद्यपि उस प्रथा के कुछ चिह्न अभी भी शेष हैं, पर मुझे विश्वास है कि वे भी कालक्रम से दूर हो जायंगे। इस सम्बन्ध में मुझे श्रीमती मुतु लक्ष्मी रेड्डी जैसे सुधारकों के प्रयत्नों की प्रशंसा करनी चाहिये। यह मुख्यत: उनके प्रयत्नों का ही परिणाम है कि यह बुराई खत्म हो पाई है। उनके प्रयत्नों के लिये हम अत्यन्त आभारी हैं। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, मद्रास ने इस प्रथा का वर्जन करने के लिये एक कानून पास कर दिया है। अतएव मैं इस प्रावधान को अनुच्छेद 13 में समाविष्ट करना आवश्यक नहीं समझती, यद्यपि प्रोफेसर शाह ने जिस भावना से प्रेरित होकर यह संशोधन रखा है, मैं उसकी बहुत सराहना करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं श्री बी. दास से बोलने के लिये कहूंगा। वे परिषद् के पिता के समान हैं और उन्हें संक्षिप्तता का उदाहरण पेश करना चाहिये।

***श्री बी. दास:** श्रीमान्, गत अवसर पर जब हम मूलाधिकारों के विषय में वाद-विवाद कर रहे थे, तब मैंने इस महान् बुराई—स्त्रियों के क्रय-विक्रय—को दूर करने के विषय में प्रारूपित विधान में व्यवस्था करने की आवश्यकता बताई थी। इस व्यापार का अर्थ है स्त्रियों को वेश्यावृत्ति धारण करने के लिये बलात् बाध्य करना। स्त्रियों के व्यापार की चर्चा करते हुये जो सारे संसार में प्रचलित एक महान् सामाजिक कुरीति है मैंने पिछली बार यह कहा था कि हमें पाखण्डी बन कर इस तथ्य को छिपाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये कि भारत में स्त्रियों का ऐसा व्यापार नहीं चलता है। श्रीमान्, अन्य स्थान पर जो निर्णय किया गया था कि मुझे अपने उस संशोधन को पेश नहीं करना चाहिये, जिसका आशय यह था कि 'मानव-पणन' शब्द के आगे 'विशेषतया स्त्रियों का पणन' ये शब्द जोड़ दिये जायें, मैं उस निर्णय को शिरोधार्य करता हूं।

श्रीमान्, हमें स्वीकार कर लेना चाहिये कि स्त्रियों का ऐसा व्यापार होता है, जिसके लिये सर्वत्र पुरुष ही उत्तरदायी हैं। उड़ीसा स्त्रियों को प्राय: भगाया जाता है। मैंने कहा था कि 1943-44 में बंगाल की महान् विपत्ति के समय लाखों नारियों को उड़ा कर पंजाब तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ले जाया गया था। श्रीमान्, विदेशी सरकार नवयुवतियों को सैनिक-शिविरों में ले जाया करती थी, और मानवता उन महिलाओं से वंचित हो जाती थी, परिवार से वे खो जाती थीं तथा देश उन्हें अच्छे नागरिक के रूप में पाने से वंचित हो जाता था। अतएव हम साधारण मनुष्यों को इस पर शर्म नहीं आनी चाहिये और ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि इस प्रकार के संशोधन को रखना हमारे लिये यह स्वीकार करना होगा कि इस देश में नारियों का पणन होता है। इसी कारण मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी। यदि परिषद् श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार करने के लिये राजी हो अथवा प्रोफेसर शाह का ही संशोधन स्वीकार करने के लिये तैयार हो, जिन्होंने कि अपने संशोधन को देवदासी प्रथा तक ही सीमित रखा है और यह नहीं सोचा है कि मन्दिरों में नृत्य का क्या प्रभाव होता है, जिसके कारण चिरकाल से हमारी राष्ट्रीय कला तथा गान-विद्या जीवित रह सकी है...।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या श्रीमती दुर्गाबाई नें इस अनुच्छेद पर किसी संशोधन की सूचना दी है, श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** नहीं।

***श्री बी. दास:** उन्होंने डॉ. अम्बेडकर को एक संशोधन भेजा है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे उसका कुछ ज्ञान नहीं है।

***श्री बी. दास:** मुझे खेद है मैंने गलत समझा। किन्तु मेरे विचार में मूलाधिकारों के विषय में हमारा विधान न्यायोचित नहीं बनेगा, यदि हम 'नारी-पणन' यह शब्द जोड़कर अपने पापों को स्वीकार नहीं करते तथा अब एवं आगे के लिये स्थिति को सुधारने का प्रयत्न नहीं करते।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्तराज्य मत्स्य): उपाध्यक्ष महोदय, दासता के समान बेगार का भी बड़ा ही काला तथा दु:खद इतिहास है। मैं एक रियासत से आया हूं अत: मैं जानता हूं कि रियासतों की दलित तथा मूक जनता के लिये यह बेगार, यह बलात् श्रम, कितना भयानक सिद्ध हुआ है। यदि इस बेगार की पूरी कथा लिखी जाये तो वह मानव के दु:खों, कष्टों, रक्त तथा अश्रुओं से परिपूर्ण होगी। मैं जानता हूं कि किस प्रकार कुछ नरेश साधारण जन को दु:ख देकर अपने भोग-विलास, अपने असंयमित जीवन में लिप्त रहे हैं, किस प्रकार उन्होंने अपने आनन्द के हेतु दलित श्रमिकों तथा मूक अज्ञानी जनता का उपयोग किया है। उदाहरणार्थ मुझे पता है कि बत्तख का शिकार करने के लिये, किस प्रकार बहुत से लोगों को ठंडे शीत सर्दी के दिनों में सारे-सारे दिन कीचड़ में बलात् बांध कर खड़ा रखा जाता है। मुझे पता है कि किस प्रकार आखेट क्रीड़ा के निमित्त बहुत संख्या में लोगों को सिंह का हांका करने के लिये बांध लिया जाता है ताकि नरेश उसे गोली मार सकें। मैंने यह भी देखा है कि दीन हीन लोगों को घरेलू तथा अन्य प्रकार के श्रम के लिये जोत लिया जाता है, चाहे वे व्याधिग्रस्त हों अथवा उनके परिवार में कोई बीमार हो। उस काम के लिये उन्हें कुछ नहीं दिया जाता अथवा बहुत कम पैसे दिये जाते हैं। केवल इतना ही नहीं है। जैसे कि आरम्भ में ही कह चुका हूं, यदि सारी कथा का वर्णन किया जाये तो यह बड़ी ही लोमहर्षक गाथा बन जायेगी। मुझे पता है कि बहुधा छोटे-छोटे अधिकारी निर्धन लोगों पर ऐसे अत्याचार करते हैं। यह छोटे-छोटे अधिकारी केवल ऐसे अत्याचार ही नहीं करते वरन् जो श्रमिक इस बेगार की विपत्ति से बचना चाहते हैं उनसे बलात् घूस भी लेते हैं। इस अनुच्छेद पर अपने विचार प्रकट करते हुये, मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मैं सरदार भूपेन्द्रसिंह मान द्वारा पेश किये गये इस संशोधन के विरुद्ध हूं जिसमें कहा गया है कि लोक प्रयोजनार्थ कार्यों के लिये अनिवार्य श्रम लेने पर क्षतिपूर्ति दी जाये, क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि यदि यह संशोधन स्वीकार कर

[श्री राजबहादुर]

लिया जाये तो सम्भव है कि इसका दुरुपयोग हो तथा लोगों को अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने के लिये बाध्य किया जाये।

सार रूप में, मैं कह सकता हूं कि अनुच्छेद 13 जन-साधारण की स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र है, तथा यह अनुच्छेद उस घोषणा-पत्र का पूरक है। इससे रियासतों की दीन, दलित तथा मूक जनता को बेगार की बला से मुक्ति मिलती है—मैं अन्य प्रान्तों के विषय में कुछ नहीं कह सकता। यह बेगार मानवता पर कलंक है तथा मानवीय सभ्यता में जो कुछ अच्छाई तथा उच्चता है, यह उसके विपरीत है। शताब्दियों से दासता की प्रथा के समान यह कुप्रथा भी जन-साधारण के कंधों पर बोझ के समान रही है। मसौदा-समिति तथा यह विधान-परिषद्—दोनों ही—उन करोड़ों मूक दलित लोगों के धन्यवाद के पात्र हैं जो कि इस अनुच्छेद द्वारा बेगार की इस बला से मुक्ति पा जायेंगे।

***श्रीमती रेणुका राय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यथासम्भव संक्षेप में बोलने का प्रयत्न करूंगी।

भारत तथा विश्व की चेतना सम्पन्न नारियां नारी-पणन की समस्या के प्रति पूर्ण रूपेण जागरूक हैं और इस बात को बरदाश्त नहीं कर सकतीं कि यह कुप्रथा जारी रहे। श्रीमान्, यदि हम श्री बी. दास के संशोधन को स्वीकार नहीं करते तो इसका यह कारण नहीं है कि हम उनके उद्देश्य के महत्त्व को नहीं समझते। हम जानते हैं कि वे नारी-पणन की समस्या पर विशेष ज़ोर देना चाहते हैं किन्तु मेरे विचार में अनुच्छेद की वर्तमान भाषा में भी यह चीज़ आ ही जाती हैं। मैं यह बात केवल इसलिये कह रही हूं ताकि यह न समझा जाये कि इस परिषद् की महिला सदस्य इस समस्या के विषय में जागरूक नहीं हैं। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है जिस पर इस देश की महिला संस्थाओं ने गत कुछ समय से अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

मेरे माननीय मित्र श्री के.टी. शाह ने जो संशोधन पेश किया है, उसके विषय में मैं श्रीमती दुर्गाबाई के विचार से सहमत हूं कि मद्रास में इस विषय पर एक कानून बन चुका है, किन्तु मेरे विचार में यदि श्री शाह के संशोधन को यह परिषद् स्वीकार कर सके, जिससे कि मन्दिरों में स्त्रियों को अर्पण करने की देवदासी प्रथा को विधान के एक स्पष्ट प्रावधान द्वारा समाप्त किया जा सके, तो यह अधिक अच्छा रहेगा, क्योंकि यह प्रथा अभी भी कई क्षेत्रों में शेष है। अन्यथा यह आशा

की जानी चाहिये कि जिन अन्य भागों में यह प्रथा अब भी है वहां इसके उन्मूलन के लिये कानून बनाया जायेगा। मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहती हूं कि नारियां इस बात को भली प्रकार समझती हैं कि नैतिकता के दो मापदण्ड होने के कारण ही नारी-पणन का जन्म हुआ है। जब समाज नैतिकता के दो मापदण्डों को हटा देने की आवश्यकता को पूर्णतया समझ जायेगा, तभी यह अनुच्छेद, जिसे यहां स्वीकार किया जा रहा है, वास्तव में कार्यान्वित हो सकेगा तथा विधान का एक कागज़ी प्रावधान न रह कर वास्तविकता बन सकेगा।

स्त्रियों के अनैतिक व्यापार को रोकने के विषय में इस देश में पहले से ही कानून मौजूद हैं, किन्तु उन पर प्रभावपूर्ण ढंग से अमल नहीं किया जाता और यदि उनकी कानूनी त्रुटियों का सुधार भी कर दिया जाये तो भी यह तभी प्रभावशील हो सकते हैं, जब कि इस समस्या के प्रति जिससे कि स्त्रियों का एक वर्ग शोषकों की दया पर निर्भर है, जिससे कि नारीत्व की प्रतिष्ठा ही गिर गई है, लोगों के हृदय बदल जायें।

***उपाध्यक्ष:** श्री नागप्पा, कृपया अपनी वक्तृता को पांच मिनट तक सीमित रख यह दिखा दीजिये कि परिषद् ने आप पर जो भरोसा किया है, आप उसके योग्य हैं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं अधिक समय नहीं लूंगा।

बेगार की प्रथा मेरे अपने प्रदेश में भी प्रचलित है—विशेषतया हरिजनों में। मुझे प्रसन्नता है कि मसौदा-समिति ने बेगार का उन्मूलन करने के सम्बन्ध में यह खण्ड रखा है। श्रीमान्, जब भी पशुओं की मृत्यु हो जाती है; तब पशु का स्वामी इन गरीब हरिजनों को बुलाता है, मृत पशु को उठवाता है, उनका चर्म उतार कर, उसे रंग कर, चप्पल बनाकर उसे मुफ्त देने के लिये कहता है। इसके बदले में उन्हें क्या मिलता है? त्योहारों पर कुछ खाना। श्रीमान्, प्राय: सरकार भी बलात् श्रम लेती है। उदाहरणार्थ यदि कोई हत्या हो जाये तो शव-परीक्षण के पश्चात् इन लोगों को पुलिस बाध्य करती है कि वे शव को हटायें तथा अन्य अन्त्येष्टि क्रियायें करें। मुझे प्रसन्नता है कि भविष्य में इस प्रकार का बलात् श्रम नहीं लिया जा सकेगा। श्रीमान्, जमीदारियों में भी यह प्रचलित है। उदाहरणार्थ यदि जमींदार के परिवार में कोई विवाह होता है तो वह इन लोगों से, विशेषत: हरिजनों से अपने सारे मकान में सफेदी करवाता है तथा इसके बदले में उन्हें सिवाय उस दिन के

[श्री एस. नागप्पा]

भोजन के और कुछ नहीं मिलता। इस प्रकार का बलात् श्रम अभी प्रान्त के अधिकतर भागों में प्रचलित है।

मैं परिषद् का ध्यान एक और बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं; वह यह है कि जब भी बड़े जमींदार की भूमि जोती जानी होती है, तत्काल ही वह उन बेचारे हरिजनों को एक दिन पहले कहला भेजेगा कि "कल सारे दिन के लिये तुम्हें हमारी सेवा करनी है; तुमको रात दिन काम करना होगा। किसी को भी दूसरे काम पर नहीं जाना चाहिये।" इसके बदले में जमींदार उन बेचारों को एक टुकड़ा दे देता है। श्रीमान्, इस प्रकार का बलात् श्रम हमारे तथा-कथित सभ्य देश में बीसवीं शताब्दी में प्रचलित है। मैं मसौदा-समिति का अत्यन्त आभारी हूं। मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का विरोध करने के ही लिये मुख्यत: खड़ा हुआ हूं। क्योंकि इससे इस अनुच्छेद के पर्यालोचन में ऐसे विषय आ जाते हैं, जिन पर कि विधान में समाविष्ट किये जाने वाले मूलाधिकारों पर विचार करते समय हमें नहीं विचार करना चाहिये।

श्रीमान्, यदि परिषद् मुझे उन व्यापक सिद्धान्तों पर जो कि इस भाग विशेष के आधार हैं कुछ समय के लिये बोलने दें, तो मैं कहूंगा कि वह यही है, हम व्यक्ति के लिये कुछ अधिकारों की प्रत्याभूति देना चाहते हैं जिससे कि वह उच्च बने। हम यह भी चाहते हैं कि कानून इन अधिकारों में हस्तक्षेप न कर सके क्योंकि यह नितान्त आवश्यक है कि यह अधिकार अक्षुण्ण रहें ताकि व्यक्ति की अवस्थिति की रक्षा हो। इस भाग विशेष में समाज की समस्त प्राचीन कुप्रथाओं के सुधारने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। यदि वे बुराइयां ऐसी हैं कि वे लोग, जिनका कि उसमें स्वार्थ निहित है, कदाचित् उन बुराइयों को चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो अवश्य ही, मेरे विचार में हमें उनके विरुद्ध व्यवस्था करनी चाहिये। किन्तु यदि उन कुप्रथाओं के विरुद्ध जनमत पहले से ही सुसंगठित हो तो मेरे विचार में विधान में ऐसी प्रथाओं पर रोक लगा कर, हमें संभवत: भारत की शुभकीर्ति पर कलंक नहीं लगाना चाहिये। जो कुप्रथायें कालक्रम से लुप्त होने वाली हैं उन पर विधान में रोक लगा देने से वे सहसा ही लुप्त नहीं हो सकतीं। मैं इन विषयों पर इसी दृष्टिकोण से देखता हूं, और इस प्रकार उन पर विचार

करते हुये मैं चाहता हूं कि परिषद् के अधिकांश मित्र इन मूलाधिकारों में हमारी युगों से चली आ रही समस्त बातों को, जो अब तक प्रचलित हैं, नहीं आने दें। समाज के कुछ भागों में प्रचलित वे प्रथायें बुरी हैं, किन्तु वे उचित समय पर, कदाचित् दो, तीन अथवा चार वर्ष में, समुचित कानून-निर्माण द्वारा मिटाई जा सकती हैं। मेरी माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने बताया है कि भारत में प्रचलित इस देवदासी प्रथा का मद्रास में कानून द्वारा उन्मूलन कर दिया गया है। अन्य प्रान्तों को भी ऐसा ही करने से कोई भी नहीं रोक सकता, और मेरे विचार में जनमत काफी जागरूक है कि सारे प्रान्तों में ऐसा ही कानून बने। अतएव जो चीज़ कल समाप्त होने वाली है, उसे मूलाधिकारों में क्यों रखा जाये? मेरे विचार में इस भाग के शेष अनुच्छेदों में भी जो कि परिषद् के समक्ष पेश होंगे, हमें ऐसे ही सिद्धान्त पर चलना चाहिये कि समाज-सुधार के विषय में हम जो कार्य साधारण कानून-निर्माण द्वारा पूरा कर सकते हैं, उसे हमें मूलाधिकारों में नहीं रखना चाहिये। किन्तु समाज में प्रचलित किसी विशेष कुप्रथा को निहित-स्वार्थ वर्ग अर्थ-लाभ के प्रयोजनार्थ चिरस्थायी बनाना चाहता है, तो अवश्य ही मेरे विचार में उसे मूलाधिकारों में रखना पूर्णतया उचित है। मेरे विचार में किसी न किसी रूप में बलात् श्रम भारत के लगभग सभी भागों में प्रचलित है, उसे बेगार कहें अथवा कुछ और, मेरे प्रदेश में किसान बहुधा भूमि से बंधे हुये गुलाम के समान होता है, और उसके कुछ अधिकार होते हैं जो इसी शर्त पर प्राप्त होते हैं कि वह दास बना रहे।

हम इसका उन्मूलन करने का प्रयत्न कर रहे हैं और इसे मूलाधिकारों में रखने का यह परिणाम होगा कि इस प्रकार की कुरीतियों को मिटाने के लिये शीघ्र कानून बनाने होंगे क्योंकि मूलाधिकारों में होने के कारण यह सरकार का कर्त्तव्य होगा। मैं परिषद से केवल यही कहता हूं कि हमें इन अनुच्छेदों में ऐसी कुरीतियों की चर्चा करके, जो कि कानून-निर्माण द्वारा समाप्त हो सकती हैं और जिनके विषय में कि जनमत काफी प्रबल है, इन अनुच्छेदों का क्षेत्र अधिक विस्तृत न बनाना चाहिये। किन्तु इसमें हमें ऐसी ही बातों को आने देना चाहिये जिनके विरुद्ध निहित-स्वार्थ वर्ग कदाचित दृढ़ता से खड़ा हो। श्रीमान् परिषद् में जो अनुच्छेद् विचारार्थ पेश है, मैं उसका समर्थन करता हूं।

श्री महावीर त्यागी: उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के विषय में मेरे मन में जो कुछ संदेह उत्पन्न होते हैं, मैं उन्हें स्पष्ट करना चाहता हूं, क्या मैं उसके लिये आपकी अनुमति मांग सकता हूं?

उपाध्यक्ष: मुझे खेद है, अब इसके लिये समय नहीं रहा।

***श्री महावीर त्यागी:** आप मुझे यह बतायें कि मैं आपकी दृष्टि अथवा आपका ध्यान कैसे अपनी ओर आकृष्ट कर सकता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** शान्ति, शान्ति।

***उपाध्यक्ष:** परिषद् ने अपना निर्णय सुना दिया है।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या कोई चिटें भेज कर अथवा हर बार खड़ा होकर आपका ध्यान आकृष्ट करें श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** परिषद् ने अपना निर्णय सुना दिया है।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या निर्णय सुनाया है?

***उपाध्यक्ष:** आप परिषद् से पूछिये।

***श्री महावीर त्यागी:** मेरे विचार में यह तो अत्यन्त अनुचित है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह बता देना चाहता हूं कि मैं किन संशोधनों को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं और किन संशोधनों को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। जितने संशोधन पेश किये गये हैं, उनमें से मैं केवल एक ही संशोधन को स्वीकार करने के लिये राज़ी हूं, वह है प्रोफेसर के.टी. शाह का संशोधन नं. 559 जिसके अनुसार अनुच्छेद 17 के खण्ड दो में 'केवल' शब्द जोड़ा जाना है। मुझे भय है कि शेष संशोधनों को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। जिन संशोधनों के विषय में मैंने कहा है कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता, उनमें एक 'देवदासी' शब्द रख देने के विषय में प्रो. के.टी. शाह का संशोधन है। मैं समझता हूं कि 'देवदासी' शब्द को रखने के विषय में उनके तर्कों का उत्तर वाद-विवाद में भाग लेने वाले अन्य सदस्यों ने दे दिया है, और मैं नहीं समझता कि अब तक जो तर्क उपस्थित किये जा चुके हैं, उनके अतिरिक्त और कुछ कहने से कोई लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध होगा।

मेरे माननीय मित्र श्री एच.वी. कामत अपने संशोधन द्वारा 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक तथा राष्ट्रीय' यह शब्द रखना चाहते हैं, उसके विषय में मेरा विचार है कि 'लोक' शब्द इतना व्यापक है कि उसमें 'सामाजिक तथा राष्ट्रीय' दोनों शब्द आ जाते हैं, और इस कारण जहां एक शब्द से कार्य हो सकता है वहां दो शब्द प्रयोग करना अनावश्यक है, और मैं समझता हूं कि वे इससे सहमत होंगे कि यही ठीक दृष्टिकोण है।

मेरे माननीय मित्र श्री दामोदर स्वरूप सेठ का संशोधन अनावश्यक दिखाई देता है अतः मैं इसे स्वीकार नहीं करता। सरदार भूपेन्द्रसिंह मान के संशोधन के विषय में यह बात है कि वे चाहते हैं कि ऐसी व्यवस्था कर दी जाये कि जब भी राज्य अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) के प्रावधानों के अधीन अनिवार्य श्रम ले, राज्य को ऐसी अनिवार्य सेवा के लिये सदा मूल्य देना पड़े। मैं नहीं समझता कि राज्य द्वारा अनिवार्य सेवा लेने पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध लगाना वांछनीय है। यह सर्वथा सम्भव है कि राज्य जो भी अनिवार्य सेवा लेगा वह इतने ही समय के लिये लेगा कि जिसे इस खण्डानुसार वह सेवा करनी पड़े, उसे अपनी जीविका कमाने के लिये पर्याप्त समय मिल सके और यदि उदाहरणार्थ ऐसा अनिवार्य श्रम अवकाश के समय तक ही सीमित रहे या ऐसे समय पर लिया जाये जबकि वह मनुष्य अपनी जीविका कमाने में संलग्न न हो, तो राज्य के लिये यह कहना पूर्णतया उचित होगा कि वह कुछ भी क्षतिपूर्ति नहीं देगा।

इस खण्ड में यह बात देखी जा सकती है कि क्षतिपूर्ति के न देने पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती; क्योंकि उप-खण्ड (2) में यह मूल सिद्धान्त रखा गया है कि जब कभी भी अनिवार्य श्रम अथवा अनिवार्य सेवा मांगी जायेगी, वह सबसे ही मांगी जायेगी, और यदि राज्य सब लोगों से सेवा लेता है तथा कुछ नहीं देता, तो मैं नहीं समझता कि वह कोई बहुत बड़ा अन्याय करता है। श्रीमान्, मेरे विचार में, अनुच्छेद के वर्तमान रूप में स्थिति को जैसी अनिश्चित रहने दिया गया है वैसी ही रहने देना वांछनीय है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। क्या डॉ. अम्बेडकर को मेरे संशोधन पर केवल इसी आधार पर आपत्ति है कि इसमें एक के स्थान पर दो शब्द हैं? यदि ऐसा है तो मुझे इस बात पर प्रसन्नता होगी, यदि 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' कोई शब्द रख दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अधिक व्यापक शब्द का प्रयोग करना अधिक अच्छा है, जिसमें कि दोनों समाविष्ट हों।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या माननीय सदस्य संशोधन नं. 548 को स्वीकार करते हैं, जो वेश्यावृत्ति के विषय में है और ज्ञानी गुरुमुखसिंह द्वारा पेश किया गया था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे पता चला है कि वह पेश नहीं किया गया था।

***उपाध्यक्ष:** वह पेश नहीं किया गया था।

अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

संशोधन संख्या 544 जो काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'17. Neither slavery nor involuntary servitude such as *begar* except as a punishment for crime shall exist within the Union State.'

(17. संघ राज्य में अपराध के लिये दण्डरूप में होने के सिवाय किसी अन्य रूप में दासता अथवा बेगार के समान अनिच्छापूर्वक सेवा का अस्तित्व नहीं होगा।)"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 545 जो श्री दामोदर स्वरूप सेठ के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि 17 के खण्ड 1 के आरम्भ में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें :

'servitude and serfdom in all forms as well as' "

(सभी तरह की दासवृत्ति और दासत्व तथा)"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 546 जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम पर है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (1) में 'मानव-पणन और बेगार' इन शब्दों के स्थान पर 'मानव-पणन अथवा धर्म के नाम पर देवदासी बनाने या किसी अन्य प्रकार की दासता एवं अपमान के जीवन में डालने के लिये मानव का अर्पण तथा बेगार' ये शब्द रख दिये जायें।

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 560 जो सरदार भूपेन्द्रसिंह मान के नाम पर है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) के अन्त में 'और उसके लिये समुचित क्षतिपूर्ति देगा' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मानः** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को वापस लेने के लिये परिषद् की अनुमति मांगता हूं।

(संशोधन परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 556 जो श्री कामत के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) में 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 559 जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है तथा डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

प्रश्न यह है:

"That in clause (2) of article 17, after the words 'discrimination on the ground' the word 'only' be added."

[कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) में, 'प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर' इन शब्दों के पहले केवल' यह शब्द जोड़ दिया जाये।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन संख्या 559 द्वारा परिवर्तित रूप में समूचे अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सख्या 559 द्वारा परिवर्तित रूप में अनुच्छेद 17 को विधान का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 17 को संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 18

***उपाध्यक्ष:** अब हम अगले अनुच्छेद को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 18 संविधान का अंग हो।

प्रथम संशोधन नं. 561 का है। यह नकारात्मक है, अत: यह अनियमित है।

संशोधन संख्या 562 तथा 564 : संख्या 562, जो कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के नाम में है और 564, जो कि श्री दामोदर स्वरूप सेठ के नाम में है, और अन्य संशोधन एक ही आशय के हैं। अत: उन पर साथ ही विचार करना होगा। संशोधन संख्या 562 को पेश करने की अनुमति दी जाती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं संशोधन पेश नहीं करता, किन्तु मैं अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** तो, फिर मैं संशोधन संख्या 564 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 18 के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें :

'nor shall any women be employed at night, in mines or in industries detrimental to their health.'"

(और न नारियों को रात्रि में, खानों में अथवा उनके स्वास्थ्य के लिये अहितकर उद्योगों में ही सेवायोजित किया जायेगा।)

श्रीमान्, यह संतोष की बात है कि अनुच्छेद 18 में अल्प-वयस्क बच्चों को संरक्षण दिया गया है। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि इसमें सुन्दर तथा कोमल स्त्री जाति को कुछ भी संरक्षण नहीं दिया गया है, जिन्हें भूतकाल में रात के समय भी खानों में और उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से अहितकर उद्योगों में सेवायोजित किया जाता था। ऐसा क्यों हुआ है इसका कारण मुझे नहीं मालूम है। अतएव श्रीमान्, मेरे विचार में यह न्याययुक्त और उचित है कि इस अनुच्छेद में यह सुझाव जोड़ दिया जाये, ताकि नारियों को भी उचित संरक्षण मिले और उन्हें रात्रि में, खानों में, तथा उनके कोमल स्वास्थ्य और उनकी सामाजिक अवस्थिति के अननुकूल उद्योगों में सेवायोजित न किया जा सके। अतएव मैं आशा करता हूं कि परिषद् मेरे इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

उपाध्यक्ष: तत्पश्चात् संशोधन संख्या 563 है।

(संशोधन नं. 563 तथा 565 पेश नहीं किये गये।)

अब अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है कि इस अनुच्छेद को मूलाधिकारों में रखा गया है। वास्तव में इस स्वतंत्रता-पत्र के विरुद्ध एक यह भी शिकायत है कि इसमें पर्याप्त आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था नहीं की गई है। यदि हम अन्य देशों के संविधानों के मूलाधिकारों का परीक्षण करें तो हम देखेंगे कि उनमें कई आर्थिक अधिकारों के सम्बन्ध में हैं। विशेषतया रूस में इस अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है कि सभी नागरिकों को काम दिया जायेगा। अवकाश तथा विश्राम के अधिकार, जरावस्था तथा रुग्णावस्था आदि में भरण-पोषण के अधिकार की वहां प्रत्याभूति दी गई है। हमने इन बातों की अपने निदेशक सिद्धान्तों में व्यवस्था की है, किन्तु मेरे विचार में उनका उचित स्थान इसी अध्याय में है। फिर भी, अनुच्छेद 18 यह आर्थिक अधिकार देता है, कि 14 वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी फैक्टरी में सेवायोजित नहीं किया जायेगा। श्रीमान्, मेरे विचार में तो आयु को बढ़ा कर सोलह वर्ष कर दिया जाये। अन्य देशों में भी यह आयु इससे अधिक है; हम चाहते हैं कि हमारे देश में भी यह आयु बढ़ा दी जाये; विशेषतया हमारी जलवायु के कारण बालक इस आयु पर निर्बल होते हैं, और आयु बढ़ा देनी चाहिये।

इसी कारण मैं यह भी चाहता हूं कि स्त्रियों को रात्रि के समय, अर्थात् अंधेरा होने के समय से प्रकाश होने तक, फैक्ट्रियों में सेवायोजित नहीं किया जाना चाहिये। वास्तव में संसार के सारे प्रगतिशील देशों में शाम से सवेरे तक स्त्रियों को श्रमयोजित करना वर्जित है। संसद् में फैक्ट्री एक्ट पर वाद-विवाद के समय इस प्रश्न पर विस्तृत विचार हुआ था। मेरे विचार में यह बड़े ही मौलिक महत्त्व का प्रश्न है और मूलाधिकारों में यह व्यवस्था कर दी जानी चाहिये कि राज्य सायंकाल से प्रात:काल तक स्त्रियों को सेवायोजित नहीं करेंगे। श्रीमान्, यदि यह कर दिया जाता तो देश में असंख्य महिलायें इसका स्वागत करतीं—विशेषत: इस कारण कि यह खानों तथा कारखानों में महिलाओं को सेवायोजित करने का प्रश्न है। आपको ज्ञात होगा कि युद्ध-काल में जब कि स्त्रियों को खानों में कार्य करने दिया गया था तो देश में बहुत ही शोर मचा था। मेरे विचार में इसको बहुत महत्त्वपूर्ण समझना चाहिये और मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इसे मूलाधिकारों में समाविष्ट करने के लिये राजी हो जायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकर:** श्री दामोदर स्वरूप ने जो संशोधन नं. 564 पेश किया है मैं उसे स्वीकार नहीं करता।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 564 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 18 के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

"और न नारियों को रात्रि में, खानों में अथवा उनको स्वास्थ्य के लिये अहितकर उद्योगों में ही सेवायोजित किया जायेगा।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं प्रस्ताव पर मत लेता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 18 को विधान का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 18 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 18-ए

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन नं. 566 के रूप में एक नये अनुच्छेद को लेते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 18 के पश्चात् 'धर्म सम्बन्धी अधिकार' इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नवीन अनुच्छेद रख दिया जाये:

'18-A. The State in India being secular shall have no concern with any religion, creed or profession of faith; and shall observe an attitude of absolute neutrality in all matters relating to the religion of any class of its citizens or other persons in the Union.' "

(18-ए. असाम्प्रदायिक राज्य होने के कारण भारतीय राज्य किसी धर्म, मत अथवा विश्वास से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा, और अपने नागरिकों के किसी भी वर्ग के या संघ के अन्य व्यक्तियों के धर्म से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों में तटस्थता का रुख रखेगा।)

श्रीमान्, इस विषय पर किंचित् भी विवाद नहीं होना चाहिये। हम बार-बार घोषित कर चुके हैं कि भारतीय राज्य असाम्प्रदायिक होगा; और इस कारण इसे किसी धर्म के मामलों से, किसी श्रद्धा, मत अथवा विश्वास विशेष के आचरण से कोई सम्बन्ध नहीं होगा—मेरे विचार में यह तो तर्कसंगत निष्कर्ष होना चाहिये।

इसके द्वारा मैं यह नहीं कहता कि धर्म के विषय में राज्य की निष्पक्षता का आशय यह होना चाहिये कि किसी धर्म विशेष के मानने वाले लोगों द्वारा, धर्म अथवा विश्वास के नाम पर चलाई जाने वाली संस्थाओं अथवा सेवाओं के प्रति नितान्त उपेक्षा का भाव रखा जाये। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि किसी विश्वास अथवा धर्म के वास्तविक आचरण से राज्य का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। न राज्य को अपने किसी कार्य द्वारा ऐसा कोई संकेत ही देना चाहिये कि वह किसी धर्म के प्रति पक्षपात करता है। नागरिकों के सब वर्गों को राज्य से सांसारिक विषयों में एक-सा बर्ताव मिलना चाहिये। और यहां तक कि उन लोगों के साथ भी वही बर्ताव होना चाहिये जो कि राज्य के नागरिक न हों किन्तु इसमें रहते हों।

स्पष्ट है कि इस संघ के नागरिकों में सभी देशों के लोग हैं, विभिन्न विश्वासों तथा धर्मों के मानने वाले लोग हैं। यदि राज्य किसी धर्म को अपना लेता है या अगर यह बात कही जाती है कि सांसारिक मामलों में वह किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रति कृपा अथवा पक्षपात करता है तो, यह राज्य के हित में अच्छा नहीं होगा, क्योंकि इससे किसी अन्य धर्म के अनुयायियों में यह भावना उत्पन्न होगी कि राज्य अमुक सम्प्रदाय विशेष के प्रति पक्षपात का भाव रखता है।

यदि राज्य ऐसा कर सके—जो कि मेरे विचार में यह अत्यन्त सुगमता से कर सकता है—कि वह सारी सांसारिक सेवाओं, सारी लौकिक कार्यवाहियों तथा जनोपयोगी चीज़ों को, जो कि सामूहिक रूप से जनता के लाभ के लिये हों, सहायता दे, चाहे वे किसी भी वर्ग द्वारा संचालित हों, तो मेरे संशोधन के अनुसार इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। किन्तु यदि राज्य किसी धर्म अथवा मत विशेष को किसी भी रूप में प्रश्रय देता हो, तो मेरे विचार में किसी असाम्प्रदायिक राज्य के लिये ऐसा करना अत्यधिक आपत्तिजनक होगा।

तदनुसार मैं सुझाव रख रहा हूं कि "असाम्प्रदायिक राज्य होने के कारण भारतीय राज्य किसी धर्म, मत अथवा विश्वास से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा"। मैं बार-बार धर्म के इस पहलू पर ज़ोर डाल रहा हूं क्योंकि धर्म वस्तुतः पारलौकिक वस्तु है, और इसी कारण राज्य को—जिसे कि मैं बिना किसी अनादर-भाव के वस्तुतः एक सांसारिक प्रतिष्ठान कह सकता हूं—इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

[प्रो. के.टी. शाह]

इस विषय पर कोई भी अनन्त समय तक बोल सकता है। मैं इस प्रकार के मौकों को अथवा इस प्रकार के वाद-विवाद को एक ऐसा अवसर नहीं समझता जब कि अनजाने में आत्म-प्रकाशन अथवा अपने दृष्टिकोण का जान-बूझ कर प्रकाशन किया जाये। अतएव इस विषय पर अधिक बोल कर परिषद् का समय नहीं लूंगा। मुझे विश्वास है कि इस विषय में सबको रुचि होगी, कम से कम मेरे अनुच्छेद पर अनुकूलता से विचार किया जायेगा।

(संशोधन संख्या 567 पेश नहीं किया गया।)

उपाध्यक्ष: संशोधन नं. 568 ।

***श्री टी.टी कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह संशोधन लगभग ऐसे ही विषय से सम्बन्ध रखता है जो खण्ड 13-ए में आया है, जिसे आपने कृपा करके कुछ समय के लिये स्थगित कर रखा है?

***उपाध्यक्ष:** तो यह स्थगित रह सकता है।

(संशोधन संख्या 569 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन नं. 566 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 18 के पश्चात् 'धर्म सम्बन्धी अधिकार' इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नवीन अनुच्छेद रख दिया जाये:

'18-A. The State in India being secular shall have no concern with any religion, creed or profession of faith; and shall observe an attitude of neutrality in all matters relating to the religion of any class of its citizens or other persons in the Union.'"

(18-ए. ऐहिक (असाम्प्रदायिक) राज्य होने के कारण भारतीय राज्य किसी धर्म, मत अथवा विश्वास से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा, और अपने नागरिकों के किसी भी वर्ग के, या संघ के अन्य व्यक्तियों के, धर्म से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों में तटस्थता का रुख रखेगा।)

संशोधन अस्वीकृत रहा।

नवीन अनुच्छेद 19 से 22

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन नं. 570 को लेते हैं।

स्वभावत: प्रथम भाग को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** पहले अनुच्छेद पर मत तो ले लीजिये।

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद पर मत लिया जा चुका है और वह पास हो चुका है। दूसरा विकल्प बिल्कुल संशोधन नं. 591 जैसा ही है और इस पर उसके साथ विचार किया जायेगा। तीसरा संशोधन अथवा विकल्प बिल्कुल 618 जैसा ही है और उसके साथ ही उस पर विचार किया जायेगा। अन्तिम संशोधन नकारात्मक है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान्, मेरे विचार में ऐसा नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे भय है कि आप सभापति की क्षमता को चुनौती दे रहे हैं, और आपको नियमों के अधीन ऐसा करने का अधिकार नहीं है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** मेरे विकल्प का प्रथम भाग बिल्कुल 591 जैसा नहीं है, क्योंकि मैं 'प्रचार' शब्द को निकाल देना चाहता था, जबकि 591 में कुछ और है।

अनुच्छेद 19

***उपाध्यक्ष:** जब निश्चय किया गया था तब इस पर विचार कर लिया गया था। परिषद् के सामने प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 19 को विधान का अंग माना जाये।"

मैं संशोधनों को एक-एक कर के लूंगा।

(संशोधन नं. 571 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन सं. 572—प्रथम विकल्प।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार: मुस्लिम): मैं अपने संशोधन के प्रथम भाग को पेश नहीं करना चाहता। मैंने अपना संशोधन दो भागों में पेश किया है और, श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से दूसरा भाग पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** आप ऐसा बाद में कर सकते हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** किन्तु, श्रीमान्, बाद में संशोधन संख्या 573 है जो मेरे मित्र श्री हिम्मतसिंह के नाम में है, और यदि वह पेश नहीं किया जाता, तो मेरा संशोधन भी जो कि तत्सदृश है रह जायेगा।

***उपाध्यक्षः** यदि वे उसे पेश नहीं करेंगे तो आपको अवसर मिल जायेगा। और यदि संशोधन संख्या 572 पेश किया जायेगा, तब भी आप वाद-विवाद के समय अपनी बात कह सकते हैं। संशोधन नं. 573, 576, 577 और अंत में 582 पर एक साथ विचार किया जा सकता है। उनमें से मैं नं. 573 को लेता हूं जो श्री हिम्मतसिंह के नाम पर है। क्या वे परिषद् में हैं?

(सदस्य उपस्थित नहीं थे और संशोधन संख्या 573 पेश नहीं किया गया।)

अगला संशोधन संख्या 572 का दूसरा भाग होगा।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में 'practise and propagate religion (धर्म को.... मानने प्रचार करने) शब्दों की जगह 'and practise religion privately' (धर्म को निजी तौर पर मानने) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के अधीन सब लोगों को विश्वास स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का अधिकार होगा। श्रीमान्, मैं मानता हूं कि लोगों के अबाधरूपेण धर्म को मानने तथा उस पर आचरण करने का अधिकार होना चाहिये, किन्तु इस देश में लोगों को धर्म का प्रचार करने देना गलत होगा। श्रीमान्, मेरी वक्तृता संक्षिप्त होगी, क्योंकि मैं बहुत बीमार रह चुका हूं और बोलते समय मुझे ज़ोर पड़ता है।

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि धर्म एक मनुष्य तथा उसके सृजनहार के मध्य निजी मामला है। इसका दूसरों से कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा अपने धर्म पर विश्वास है और श्रीमान्, आपका अपने धर्म पर विश्वास है। आप मेरे धर्म में हस्तक्षेप क्यों करें, और मैं आपके धर्म में हस्तक्षेप क्यों करूं? धर्म केवल मोक्ष-प्राप्ति का साधन है। मान लीजिये मेरा सच्चा विश्वास है कि मैं अपनी ही विचारधारा और अपने धर्म द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता हूं और श्रीमान, आपका सच्चा विश्वास है कि आप अपने तरीके से ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, तो मैं आपसे मेरे मार्ग द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिये क्यों कहूं तथा आप मुझे अपने

मार्ग के अनुसार मुक्ति प्राप्त करने के लिये क्यों कहें? यदि आप इस सिद्धांत को मानते हैं तो धर्म का प्रचार क्यों किया जाये? जैसा कि मैं कह चुका हूं धर्म तो व्यक्ति और उसके परमेश्वर के मध्यवती सम्बन्ध की बात है। तो फिर सच्चाई से धर्म को मानिये तथा उस पर अपने घर में आचरण करिये। आप प्रचार के लिये धर्म का प्रदर्शन मत करिये। दिखावे के लिये लोगों को मत दिखाइये कि आपका धर्म क्या है। यदि आप इस देश में अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ करेंगे तो आप दूसरों के लिये एक सरदर्द बन जायेंगे। अब तक यह एक सरदर्द ही है।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह एक असाम्प्रदायिक राज्य है, और एक असाम्प्रदायिक राज्य को धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप मुझे निजी रूप से अपने धर्म को मानने तथा उस पर आचरण करने के लिये अकेला छोड़ दीजिये। मैं केवल यही कहना चाहता हूं, क्योंकि, श्रीमान्, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैं अपने संशोधन को स्वीकार करने के लिये इस परिषद् से निवेदन करता हूं विशेषत: माननीय डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं और आशा करता हूं कि वे इसे स्वीकार कर लेंगे। इन शब्दों के साथ, मैं अपनी जगह लेता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 572 जो श्री मिश्र के नाम पर है। क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री लोकनाथ मिश्र:** श्रीमान्, मैं इसे पेश करना चाहता था।

***उपाध्यक्ष:** मैं जानता हूं। किन्तु उसकी तो अनुमति नहीं दी गई है। मैं जानना चाहता हूं कि क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री लोकनाथ मिश्र:** हां, श्रीमान्।

(संशोधन संख्या 576, 577, 582 का प्रथम भाग तथा 575 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् अगला संशोधन है संख्या 578, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है। शब्दिक संशोधन होने के कारण इसकी अनुमति नहीं दी जाती। अब मैं संशोधन संख्या 579 तथा 580 को लेता हूं। वे लगभग एक ही

[उपाध्यक्ष]

हैं, अतः मैं प्रस्तावक से 579 को पेश करने के लिये कहता हूं। वह भी मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में 'विश्वास स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा' इन शब्दों के स्थान पर 'धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का अधिकार होगा' ये शब्द रख दिये जायें।"

यह लगभग शब्दिक संशोधन है।

***उपाध्यक्षः** क्या आप चाहते हैं कि मैं संशोधन नं. 580 पर मत लूं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हां, श्रीमान।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 574, 581, 582 (दूसरा भाग), 587, 588 और 589 एक ही आशय के हैं और उन पर एक साथ विचार किया जायेगा। संशोधन नं. 581 के पेश करने की अनुमति दी जाती है।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः मैं इसे पेश नहीं करता।

[संशोधन नं. 574, 582 (दूसरा भाग) और 587 पेश नहीं किये गये।]

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) को हटा दिया जाये, तथा उसके स्थान पर निम्नलिखित शब्द रख दिये जायें:

'No person shall have any visible sign or mark or name, and no person shall wear any dress whereby his religion may be recognised.' "

(कोई भी व्यक्ति ऐसा दृश्य चिह्न अथवा निशान अथवा नाम नहीं रखेगा, और न ही कोई व्यक्ति ऐसे वस्त्र ही पहनेगा जिससे कि उसके धर्म को पहचाना जा सके।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** एक औचित्य प्रश्न है। क्या माननीय सदस्य अदृश्य चिह्नों, निशानों अथवा नामों की चर्चा कर रहें हैं? क्या वे दृश्य चिह्नों को हटा कर अदृश्य चिह्नों अथवा निशानों को पसन्द करते है? अदृश्य नाम कैसे हो सकते हैं?

***उपाध्यक्षः** क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री तजम्मुल हुसैनः** मेरे माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने जो कुछ कहा है मैं उसे समझ नहीं पाया हूं। वे इस विषय में स्पष्टीकरण चाहते हैं कि अदृश्य चिन्ह कैसे हो सकते हैं। मेरा आशय यह है कि ऐसा कोई दृष्ट चिह्न अथवा निशान अथवा नाम नहीं होना चाहिये जिससे कि कोई पहचाना जा सके। 'परशाद' नाम से आप जान सकते हैं कि वह पुरुष 'कायस्थ' होगा। 'सैयद' नाम से आप जान सकते हैं कि वह 'मुसलमान' होगा। मेरे संशोधन की भाषा खराब हो सकती है, किन्तु मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन को तो केवल अर्धविराम, विराम, पूर्णविराम का ही पता है।

***उपाध्यक्षः** आपको इस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** मैं यह बताना चाहता हूं धर्म मनुष्य और उसके परमात्मा के बीच की एक निजी बात है। इसका सम्बन्ध संसार में किसी और से नहीं होता। दूसरे का धर्म क्या है, इससे भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। तब ऐसे दृष्ट चिह्न क्यों रखे जायें जिससे किसी का धर्म पहचाना जा सके? श्रीमान्, आप देखेंगे कि समस्त सभ्य देशों में—और आजकल यूरोप तथा अमरीका के देश ही सभ्य देश हैं—कोई ऐसा दृश्य चिह्न अथवा निशान नहीं होता जिससे कि यह पहचाना जा सके कि कोई किस धर्म का मानने वाला है। मुझे इस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, मैं केवल मोटी-मोटी बातें कहूंगा। सभ्य देशों में लोगों के केवल पारिवारिक नाम होते हैं, जैसे डिजरेली और बर्कनहैड। इन नामों को देख कर आप नहीं कह सकते कि डिजरेली यहूदी था तथा बर्कनहैड ईसाई था। यदि आप लार्ड रीडिंग का नाम सुनें तो आप नहीं बता सकते कि वह किस धर्म का अनुयायी था। इंगलिस्तान में एक आदमी था जिसका नाम लवग्रोव था। आप नहीं बता सकते कि वह किस धर्म का अनुयायी था, यद्यपि मैं जानता हूं कि वह मुसलमान था। इंगलिस्तान में कई ईसाई हैं जो मुसलमान हो गये हैं। अतः उन देशों में किसी आदमी के नाम से ही आप यह नहीं जान सकते कि वह किस धर्म का है। हां, श्रीमान्, मैं आपको बता चुका हूं कि इस देश में किसी मनुष्य के नाम से ही आप उसके धर्म का पता लगा सकते है। आप 'परशाद' का नाम सुनते हैं। मेरे प्रान्त में इसका अर्थ कायस्थ होता है। यदि आप ओझा अथवा झा

[श्री तजम्मुल हुसैन]

का नाम सुनें तो आपको पता लग जाता है कि वह ब्राह्मण हैं। बंगाल में आप जानते हैं कि मुखर्जी नाम के लोग ब्राह्मण होते हैं। अत: मैं इन चीजों को नहीं चाहता। मैं जानता हूं कि मैं समय से सौ वर्ष आगे की बात कह रहा हूं। किन्तु फिर भी मैं अपनी बात तो कहूंगा ही।

सभ्य देशों में, इंगलिस्तान में एक समय था जब कि वहां वस्त्रों में एकरूपता नहीं थी। इस देश में आपको सब प्रकार के वेष मिलते हैं।

यहां धोतियां हैं, पाजामे है, कुर्ते हैं, कमीज़ें हैं—और न पाजामें, न धोती, लोग नंगे भी रहते है, सब प्रकार की चीजें हैं। किसी समय इंगलिस्तान में भी वही बात थी।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): एक औचित्य प्रश्न है—मि. तजम्मुल हुसैन जो कुछ कह रहे हैं, उस पर पहले उन्हें स्वयं चलना चाहिये। उन्हें अपना नाम बदल लेना चाहिये क्योंकि उनका नाम देखने से पता लग जाता है कि वे मुस्लिम हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मुझे मौलाना के बाधा डालने पर खेद है। जब सारा देश मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगा तक मैं अपना नाम बदल लूंगा। तब वे यह नहीं जान सकेंगे कि मैं क्या हूं और कौन हूं।

हां, श्रीमान्, मैं वेष की बात कर रहा था। एक समय था जब कि इंगलिस्तान में कोई एकरूपता नहीं थी, किन्तु माननीय कानून-सदस्य मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि पार्लियामेण्ट में एक कानून पास हुआ था जिससे कि वेष की एकरूपता उत्पन्न हो गई थी, और अब इंगलिस्तान में, और सारे यूरोप में और अमरीका में वेष की एकरूपता है। हम एक राष्ट्र हैं। हमारा एक ही प्रकार का वेष होना चाहिये; एक ही प्रकार के नाम होने चाहियें; और कोई दृश्य चिह्न नहीं होने चाहियें। अन्त में मैं कहता हूं कि हम एक असाम्प्रदायिक राज्य बनने जा रहे हैं। हमें असाम्प्रदायिक राज्य होने के नाते अपने वेष से नहीं पहचाना जाना चाहिये। यदि आपका एक विशेष प्रकार का वेष हो तो आप तत्काल जान जाते हैं कि आप हिन्दू हैं या मुसलमान हैं। यह चीज़ हट जानी चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

(संशोधन नं. 589 और 583 पेश नहीं किये गये।)

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के साथ निम्नलिखित शर्त जोड़ दी जाये:

'Provided that no propaganda in favour of any one religion, which is calculated to result in change of faith by the individual affected, shall be allowed in any school or college or other educational institution, in any hospital or asylum, or in any other place or institution where persons of a tender age, or of unsound mind or body are liable to be exposed to undue influence from their teachers, nurses or physicians, keepers or guardians or any other person set in authority above them, and which is maintained wholly or partially from public revenues, or is in any way aided or protected by the Government of the Union, or of any State or public authority therein.' "

(किन्तु शर्त यह है कि किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय अथवा अन्य शिक्षण-संस्था में, किसी हस्पताल अथवा आश्रम या संस्था में, प्रभावापन्न व्यक्तियों से धर्म परिवर्तन कराने के उद्देश्य से किसी धर्म के पक्ष में कोई प्रचार न किया जायेगा, जहां कि कोमल आयु अथवा निर्बल मस्तिष्क या स्वास्थ्य के लोगों पर उनके अध्यापकों, नर्सों अथवा चिकित्सकों, रक्षकों अथवा संरक्षकों अथवा उनके रक्षार्थ रखे हुये किसी व्यक्ति द्वारा अनुचित प्रभाव पड़ना सम्भव हो, और जो सार्वजनिक धन द्वारा पूर्णतः अथवा अंशतः संधृत हों, अथवा जिन्हें संघ अथवा किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा उनमें स्थित किसी लोक-प्राधिकारी द्वारा किसी प्रकार की सहायता या रक्षा मिलती हो।)

श्रीमान्, मुख्य अनुच्छेद में प्रचार की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। मुझे इस अधिकार पर कोई आपत्ति नहीं है, कि किसी धर्म विशेष के अनुयायी को, इस उदार राज्य में, इस बात की स्वतन्त्रता हो कि वह आराधना की अपनी पद्धति के लाभों अथवा सौन्दर्य को दूसरे के समक्ष रखे। मेरी केवल एक ही शर्त है जिसे कि इस संशोधन में रखने का प्रयत्न किया गया है। वह यह है कि इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये जैसा कि भूतकाल में हुआ है। ऐसी संस्थाओं तथा स्थानों में जहां कि कोमल आयु के अथवा मानसिक या शारीरिक निर्बलता से पीड़ित लोग रहते हैं जिन पर अनुचित प्रभाव पड़ सकता है, वहां

[प्रो. के.टी. शाह]

सम्भव है कि उन पर वहां के प्राधिकारियों के व्यक्तित्व का अधिक प्रभाव पड़ेगा और किसी धर्म विशेष की आंतरिक अच्छाई का अथवा उसके पक्ष में अकाट्य युक्तियों का प्रभाव उतना न पड़ेगा और उसका परिणाम यह होगा कि वे लोग धर्म परिवर्तन कर लेंगे। इसे वास्तविक धर्म परिवर्तन नहीं कह सकते बल्कि ऐसा धर्म परिवर्तन तो अनुचित प्रभाव में पड़कर ही किया गया है जिसे रोकना चाहिये।

मेरा उन लोगों से कोई झगड़ा नहीं है जो कि अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त धर्म के विषय में सभी उपलबध सामग्रियों पर पूर्ण तथा परिपक्व विचार करके अपनी राय बदलते हैं। यदि मेरी बात से कोई अप्रसन्न न हो तो मैं कह सकता हूं कि इस संसार में अधिकांश धर्म तर्कसंगत विश्वास की चीज़ें नहीं हैं; वे अवाप्त स्वभाव हैं, अथवा पूर्वजों से लिये हुये अविचारपूर्ण विश्वास हैं जो कि कदाचित् विपक्ष के दृढ़ विश्वास अथवा विरोधी तर्क के सामने न टिक सकें। इसलिये जो भी जनता के मस्तिष्क को अविचारपूर्ण विश्वास से स्वतंत्र तथा नये विचारों के लिये खुला रखना चाहता हो, वह इस पर आपत्ति नहीं करेगा कि प्रचार की ऐसी स्वतंत्रता होनी चाहिये जिससे कि धर्म परिवर्तन हो सके।

अतएव मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि कोई सार्वजनिक स्थान में, खुले मैदान में, उद्यानों में, बागों, रंगमंच पर अथवा किसी अन्य सार्वजनिक स्थान पर कोमल आयु अथवा निर्बल मस्तिष्क या शरीर के लोगों को भी भाषण दे, लिख कर कुछ कहे अथवा उपदेश दे; क्योंकि उन स्थानों पर तो वे लोग किसी अनुचित दबाव में न आयेंगे और न उन सार्वजनिक स्थानों पर शिक्षा अथवा उपदेश देने वाले ही किसी अधिकार-युक्त स्थान पर होते हैं, जहां वे अनुचित प्रभाव डाल सकें। अत: ऐसी जगहों के लिये तो यह माना जा सकता है कि उनके तर्क की शक्ति, उनकी युक्तियों के बल पर ही लोगों ने धर्म-परिवर्तन किया है, किसी अनुचित प्रभाव अथवा अनुचित अधिकार के कारण नहीं। किन्तु ऐसे स्थानों में जैसे कि किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय, चिकित्सालय अथवा आश्रम में, वे लोग, जो कि अध्यापक अथवा उपदेशक, चिकित्सक, संरक्षक अथवा नर्स के रूप में अधिकार के पद पर आरूढ़ हैं, अपनी उस विशेष स्थिति से लाभ उठाकर अपने अधीन लोगों पर प्रभाव डालते हैं, उन लोगों के समक्ष जीवन प्रयोजनों के प्रति उससे एक भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं जो कि जन्म से ही उन्हें मिला हुआ है, तो मैं समझता हूं कि यह अनुचित प्रभाव डालना ही है, अत: यह आपत्तिजनक है।

इसकी भी अनुमति दी जा सकती है, अगर उस संस्था विशेष को सार्वजनिक धन से कोई लाभ प्राप्त न होता हो, अथवा संघ या उसके किसी भाग के किसी सार्वजनिक प्राधिकारी से उसे कोई सहायता, रक्षण अथवा प्रोत्साहन न मिलता हो। मुझे आशा है कि परिषद् इस बात को समझती है कि यह संशोधन कितना नरम है और इस प्रावधान में जो यह प्रतिबन्ध रखा गया है कि यह केवल उन्हीं लोगों पर लागू होगा जो ऐसे स्थानों या संस्थाओं में हैं जहां अवस्था अथवा विकृत मस्तिष्क या शरीर की अयोग्यता के कारण वे अनुचित दबाव के शिकार बन सकते हैं, आशा है, परिषद् उसके महत्त्व को भी समझती है।

एक कारण तो यह हुआ। इसके अतिरिक्त केवल उसी प्रचार पर आपत्ति हो सकती है जो कि बालकों, असहायों, अशक्त अथवा निर्बल मस्तिष्क वालों पर अधिकार-सम्पन्न लोगों अर्थात् अध्यापकों, नर्सों अथवा संरक्षकों द्वारा किया जाये। यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रतिबन्ध है।

तीसरे, धर्म-परिवर्तन के विषय में प्रचार करने वाली केवल उन्हीं संस्थाओं पर हमें आपत्ति है जो कि पूर्णतः अथवा अंशतः सार्वजनिक आय द्वारा संधृत हैं। हो सकता है उन्हें आर्थिक सहायता मिलती हो; अथवा उन्हें राज्य द्वारा मान्यता ही मिलती हो, जो कि कदाचित् प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता से अधिक मूल्यवान है, और वे जनता से शुल्क वसूल करती हों, जिससे कि उन्हें अधिक लाभ हो, और नाम के लिये सरकारी आगम में से वे कुछ अनुदान न लेती हों, अथवा उन्हें किसी अन्य सार्वजनिक प्राधिकारी द्वारा सहायता अथवा रक्षण प्राप्त होता हो।

इन तीन सारभूत प्रतिबन्धों के होते हुये, मुझे विश्वास है कि कोई भी मेरे संशोधन पर विवाद अथवा आपत्ति नहीं करेगा, विशेषतः जबकि उस प्रचार का आशय अपने पूर्वजों से प्राप्त धर्म, विश्वास अथवा आराधना के रूप को बदलना हो, और वह प्रचार उन लोगों द्वारा किया जाये जो उन संस्थाओं में अधिकारी हों और जिन लोगों का धर्म परिवर्तन किया जाये वे किसी ऐसी प्रकार की निर्योग्यता से पीड़ित न हों, जिनकी कि मैंने चर्चा की है।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इससे बहुत तीव्र भावनायें उत्पन्न हो सकती हैं। कई ऐसे धर्म हैं जो खुले तौर पर धर्म-परिवर्तन ही अपना उद्देश्य बताते हैं। कई ऐसे धर्म हैं जो कि धर्म को लोगों की आत्मा पर छोड़ देते हैं, तथा धर्म-परिवर्तन का प्रयत्न नहीं करते। कुछ भी हो, अपने धर्म के प्रचार की स्वतंत्रता का विरोध नहीं करते हुये, मेरा विश्वास है कि जो धर्म-परिवर्तन का कार्य करना चाहते हैं, उनके

[प्रो. के.टी. शाह]

उपदेशकों तथा प्रचारकों से यह बहुत ही साधारण प्रार्थना है कि उन्हें कम से कम इतना आत्म-संयम रखना चाहिये; अर्थात् किसी प्रकार की सार्वजनिक सहायता से संधृत अथवा किसी का सार्वजनिक प्रोत्साहन प्राप्त संस्थाओं को प्रचार अथवा धर्म-परिवर्तन के लिये काम में न लेना चाहिये, ताकि जो लोग अन्य प्रभावों से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हैं, जिनकी बुद्धि परिपक्व नहीं है और जो किसी प्रकार की बाधाओं के अधीन हैं, उन पर अनुचित प्रभाव न पड़े।

श्रीमान्, मैंने यह प्रयत्न किया है कि मैंने जो थोड़ी-सी बातें कही हैं उनमें कोई भी ऐसा शब्द न हो, जिससे धर्म-प्रचार के अधिकार पर मेरे द्वारा सुझाये गये प्रतिबन्धों से किसी को किंचित् भी आशंका हो सके। मैंने ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं दिया है, यद्यपि ऐसे उदाहरण बहुत हैं जहां कि अनुचित लाभ उठा कर ऐसे तरीके से धर्म-परिवर्तन कराये गये हैं जो कि अत्यन्त निन्दनीय कहा जा सकता है। जो प्रचारकों के धर्म पर अन्धविश्वास कर लेते हैं वे प्रसन्नता से उस धर्म में चले जायें। किन्तु मैं उनसे प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे इस बात को समझें कि मैं यह सुझाव रख रहा हूं कि जो लोग किसी निर्योग्यता से पीड़ित हों उनके साथ इस प्रकार की कार्यवाही नहीं होनी चाहिये; वे मेरी बात का उलटा अर्थ न लगायें, मैं केवल यही कहता हूं कि उनके अपने धर्म को मानने या उसका प्रचार करने पर मुझे किंचित् भी आपत्ति नहीं है, किन्तु उन्हें अपनी धार्मिक कार्यवाहियों में इस प्रकार के गैर-कानूनी तरीकों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

मैं स्वयं किसी धर्म विशेष का मानने वाला नहीं हूं, अतः मैं परिषद् को आश्वासन दे सकता हूं कि मैं किसी एक धर्म के प्रति पक्षपातपूर्ण अथवा दूसरे धर्म के विरुद्ध होने की भावना से प्रेरित नहीं हूं। मैं केवल यही चाहता हूं कि इसे पूर्णतः वैयक्तिक विषय रहने दिया जाये। जब आप किसी सामाजिक सभा अथवा सामूहिक संघ में एकत्र हों तो कम से कम इतने शिष्टाचार का तो ध्यान अवश्य ही रखें कि आप किसी अनुचित उपाय से अपना प्रभाव नहीं जमायेंगे वरन् अपनी युक्तियों की शक्ति पर भी निर्भर करेंगे। श्रीमान्, मैं परिषद् से अपने प्रस्ताव की सिफारिश करता हूं।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के साथ वाली व्याख्या में 'profession' (धर्म को...मानने) शब्दों के स्थान पर 'practice' (धर्म पर...आचरण करने) ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 19 बहुत ही व्यापक है। इसमें कहा गया है कि "सब व्यक्तियों को विश्वास स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का अधिकार होगा।" अब, जहां तक विश्वास स्वातंत्र्य का प्रश्न है, इसका यह अर्थ है कि किसी मनुष्य को किसी धर्म के मानने का अधिकार है अथवा किसी धर्म को न मानने का भी। यदि कोई मनुष्य किसी धर्म को मानता है तो वह अपनी इच्छानुसार किसी धर्म को मानने के लिये स्वतंत्र है चाहे वह हिन्दुत्व, इस्लाम, बौद्धमत अथवा सिख-मत अथवा किसी को माने। तत्पश्चात्, उस धर्म को मानते हुये उसे उस धर्म के सिद्धान्तों पर आचरण करने की स्वतंत्रता है। उदाहरणार्थ, यदि इस्लाम में नमाज अपेक्षित है तो मुसलमान उस पर आचरण करने तथा उसका प्रचार करने के लिये स्वतंत्र है। मैं नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि कृपाण धारण करने को 'सिख धर्म को मानना' कहने के स्थान पर 'सिख धर्म पर आचरण करना' कहना अधिक उचित होगा। मुझे केवल यही कहना है।

***उपाध्यक्षः** ऐसा प्रतीत होता है कि इस संशोधन पर भी एक संशोधन है। जहां तक मुझे पता चला है यह पेश नहीं किया जायेगा। अगला संशोधन जोकि पेश किया जा सकता है, यह केवल 591वां है और श्री लोकनाथ मिश्र के नाम पर है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** उपाध्यक्ष महोदय, यदि आप मुझे इस अनुच्छेद के आम बहस मुबाहिसे में भाग लेने की अनुमति दे दें तो इस संशोधन को पेश ही नहीं करूंगा।

***उपाध्यक्षः** मैं इसकी प्रत्याभूति कैसे दे सकता हूं? मुझे कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना होगा। आपको अवसर मिले या न मिले यह तो इस बात पर निर्भर होगा कि वाद-विवाद का क्या ढंग होता है। आप इस संशोधन को पेश करने के लिये स्वतंत्र हैं।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) की व्याख्या के अन्त में 'और तदनुसार अन्य धर्मों के आचरण का अंग माना जायेगा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

यदि मुझे सामान्यतः समूचे अनुच्छेद 19 पर बोलने दिया जाता और इस संशोधन को पेश करने के लिये न कहा जाता तो मुझे प्रसन्नता होती। मेरे विचार में यदि विधान के मसौदे का अनुच्छेद 13 स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र है, तो अनुच्छेद 19 हिन्दुओं को गुलाम बनाने का घोषणा-पत्र है। मैं सचमुच यह अनुभव

[श्री लोकनाथ मिश्र]

करता हूं कि यह अत्यन्त अपमानजनक अनुच्छेद है, विधान के मसौदे का सबसे काला अंश हैं। मैं सविनय निवेदन करता हूं कि मैंने सारे संवैधानिक नज़ीरों का अध्ययन किया है और उन पर विचार किया है, किन्तु मैंने धर्म के विषय में, मूलाधिकार के रूप में 'प्रोपेगंडा' (प्रचार) शब्द का प्रयोग कहीं नहीं देखा।

श्रीमान्, हमने अपने राज्य को असाम्प्रदायिक राज्य घोषित कर दिया है। उचित तथा स्पष्ट कारणों से ही हमने ऐसा किया है। क्या इसका यह अर्थ है कि हमें धर्म से कोई प्रयोजन नहीं? आप जानते हैं कि धर्म के प्रचार के कारण ही भारत में ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई और भारत को पाकिस्तान और भारत में बांटना पड़ा। यदि इस्लाम इस देश पर अपनी इच्छा नहीं थोपता, तो भारत पूर्णतः एक असाम्प्रदायिक राज्य तथा एकरूप राज्य होता। विभाजन का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव हमने धर्म को हटा कर ठीक ही किया। और अब यह कहना, कि मूलाधिकार के रूप में प्रत्येक को अपने धर्म के प्रचार करने का अधिकार है, ठीक नहीं है। क्या हम यह कहना चाहते हैं कि हम हिन्दुत्व के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म चाहते हैं जो कि भारत में अच्छी तरह जड़ नहीं जमा सका है, और अन्य धर्मों पर रोक लगाना चाहते हैं? हम इसे ऐहिक या असाम्प्रदायिक राज्य क्यों बनाते हैं? कारण यह हो सकता है कि धर्म आवश्यक नहीं है, अथवा यह भी कारण हो सकता है कि धर्म आवश्यक है, किन्तु बात यह है कि चूंकि भारत में हिन्दुत्व, ईसाई, इस्लाम और सिख-मत आदि कई धर्म हैं, हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि किसे स्वीकार करें। इसीलिये आप कोई धर्म रखना नहीं चाहते। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि आप धर्म को स्वीकार करते हैं तो आपको हिन्दुत्व को ही स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि भारत की एक बहुत बड़ी आबादी इसी धर्म पर चलती है। इसी को मानती है।

***उपाध्यक्षः** हम सोमवार को वाद-विवाद पुनः आरम्भ करेंगे। मेरे मुस्लिम भाइयों ने मुझसे प्रार्थना की है कि आज शुक्रवार है अतः हमें अब बैठक स्थगित कर देनी चाहिये। मेरे विचार में हमें उनके प्रति सौहार्द दिखाना चाहिये और अब बैठक स्थगित कर देनी चाहिये, और हमें सोमवार को प्रातः दस बजे पुनः समवेत् होना चाहिये।

श्री मिश्र अपना शेष भाषण तभी देंगे।

तत्पश्चात् परिषद् सोमवार, तारीख 6 दिसम्बर, 1948 के प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।